MAPA - 04

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

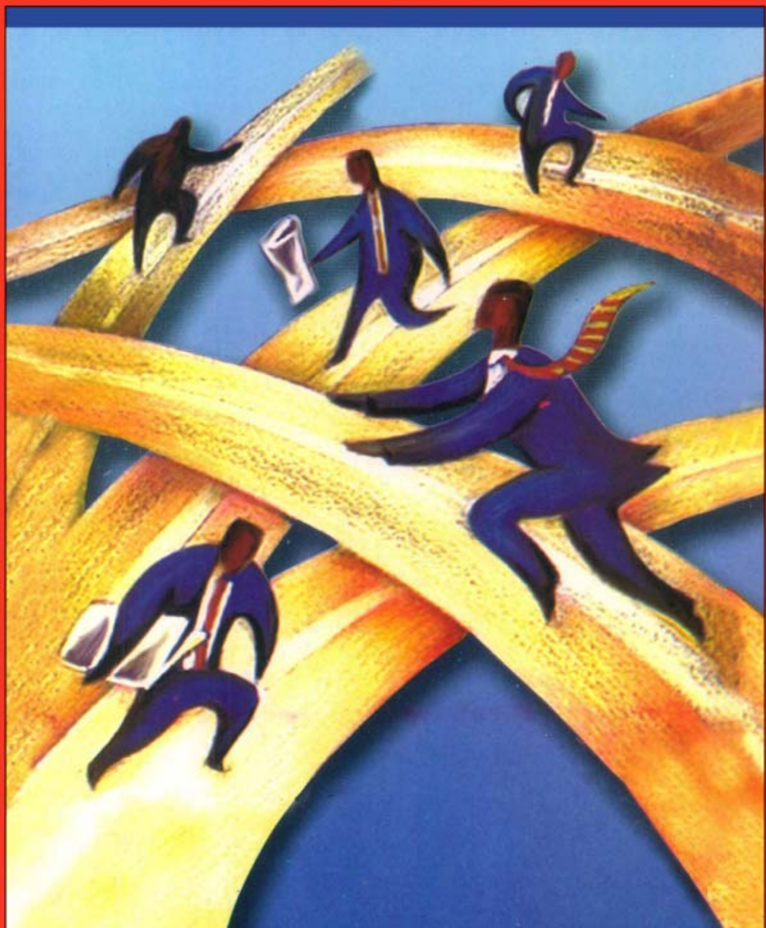

कार्मिक प्रशासन

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

कार्मिक प्रशासन

इकाई सं.	इकाई का नाम	पेज नं.
इकाई - 1	कार्मिकीकरण : अर्थ, प्रकृति, क्षेत्र एवं महत्व	6
इकाई - 2	सामान्य तथा विशेषज्ञों के विशिष्ट संदर्भ में लोक सेवाओं का वर्गीकरण, श्रेणीकरण एवं एकीकरण	18
इकाई - 3	मानव संसाधन का विकास : प्रोत्साहन, मनोबल और अभिप्रेरण के सिद्धान्त एवं व्यवहार, आचरण के नियम तथा अनुशासनात्मक विनिमय	33
इकाई - 4	लोक सेवाओं में मूल्य एवं नैतिकता, तटस्थता एवं प्रतिबद्धता	59
इकाई - 5	संघ व राज्य लोक सेवा आयोग	67
इकाई - 6	लोकसेवकों के राजनीतिक अधिकार-संघ बनाने का अधिकार, राजनीति में भाग लेने व वोट देने का अधिकार, न्यायालयों एवं अन्य न्यायाधिकरणों में जाने का अधिकार	89
इकाई - 7	फ्रांस में लोक सेवकों के राजनैतिक अधिकार	107

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रो. (डॉ.) नरेश दाधीच

कुलपति

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

संयोजक / सदस्य

संयोजक एवं समन्वयक

प्रो. पी.सी. माथुर

परामर्शदाता (लोकप्रशासन)

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सदस्य

1. **प्रो. अरविन्द शर्मा**
   आचार्य, प्रबंध विकास संस्थान
   गुड़गांव
2. **प्रो. खालिद मिर्जा**
   निदेशक, लोक प्रशासन विभाग
   पटना विश्वविद्यालय, पटना
3. **प्रो. संगीता शर्मा**
   आचार्य, लोक प्रशासन विभाग
   राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
4. **डॉ. बजरंग सिंह राठौड़**
   वरिष्ठ व्याख्याता, लोक प्रशासन विभाग
   डूंगर कॉलेज, बीकानेर
5. **प्रो. आर.पी. शर्मा**
   से.नि. आचार्य, लोक प्रशासन विभाग
   राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
6. **प्रो. पी.सी. माथुर**
   परामर्शदाता (लोक प्रशासन)
   व.म.खु.वि., कोटा
7. **आर.पी. जोशी**
   आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग
   महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर

सम्पादन एवं पाठ लेखन

सम्पादक

प्रो.(डॉ.) अनाम जैतली

आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

लेखक	(इकाई सं.)	लेखक	(इकाई सं.)
1. **प्रो. प्रदीप सक्सेना** सहायक आचार्य, लोक प्रशासन विभाग **राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर**	**(1)**	2. **डॉ. इन्दु शर्मा** विभागाध्यक्ष, लोक प्रशासन विभाग **एस.एस. जैन सुबोध पी.जी. महाविद्यालय,रामबाग सर्किल, जयपुर**	**(5)**
3. **डॉ. सुरेश गोयल** आचार्य, लोक प्रशासन विभाग **राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर**	**(2,3)**	4. **डॉ. विजय करण सिंह** व्याख्याता, लोक प्रशासन **राजकीय महाविद्यालय, कोटा**	**(6)**
5. **डॉ. खालिद मिर्जा** निदेशक, लोक प्रशासन विभाग **पटना विश्वविद्यालय, पटना**	**(4)**	6. **प्रो. आर.पी. शर्मा** से.नि. आचार्य, लोक प्रशासन विभाग **राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर**	**(7)**

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो. .(डॉ.) नरेश दाधीच	**प्रो.(डॉ.) अनाम जेटली**	**योगेन्द्र गोयल**
कुलपति	निदेशक(शैक्षणिक)	प्रभारी
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	**संकाय विभाग**	**पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग**

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल
सहायक उत्पादन अधिकारी,
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

उत्पादन- सितम्बर 2010 ISBN - 13/978-81-8496-121-8

सर्वाधिकार सुरक्षित : इस सामग्री के किसी भी अंश की वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप मे मिमियोग्राफी (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

निदेशक (अकादमिक) द्वारा वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

इकाई – 1
कार्मिकीकरण: अर्थ, प्रकृति, क्षेत्र एवं महत्व

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 स्टाफिंग या कार्मिकीकरण का अर्थ
1.3 कार्मिकीकरण की प्रकृति
1.4 कार्मिकीकरण का क्षेत्र
1.5 सारांश
1.6 अभ्यास प्रश्न
1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.1 प्रस्तावना

लोक कार्मिक प्रशासन व्यवस्था सरकार के कार्यो, उत्तरदायित्वों एवं निष्पादकता को दर्शाती है। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् से विकासशील देशों की सरकारों में व्यापक परिवर्तन हुए हैं तथा उन परिवर्तनों का दबाव एवं जोर लोक कार्मिक व्यवस्था पर आया है। ऐसा माने जाना लगा है कि लोक कार्मिक व्यवस्था में व्यापक नीतिगत परिवर्तन करने जाने चाहिये जिसमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण लोक कार्मिकों से सम्बन्धित नीतियाँ (Staffing Policies) हैं। लोक कार्मिक नीति सरकार की निष्पादकता एवं प्रजातंत्र प्रणाली को चित्रित करती है। यह नीतियां दर्शाती है कि लोक प्रशासन का संचालन किन आधारों पर संचालित किया जा रहा है तथा सरकार किन आधारों को प्राथमिकता देती हैं जोकि आगे चलकर संगठन की सफलता या असफलताओं को निर्धारित करती है।

यह सर्वमान्य है कि देश का संचालन संविधान के अनुसार किया जाना चाहिये तथा संविधान में जिन अधिकारों, सिद्धान्तों एवं कर्तव्यों का वर्णन किया गया है उनका पालन किया जाना चाहिये। प्रत्येक सरकार का यह दायित्व होता है कि वह देश का प्रशासन उन विधियों, नियमों एवं कर्तव्यों से संचालित करे जोकि संविधान के मूल संरचना में वर्णित की गई हैं यथा अवसरों की समानता, योग्यता, स्वतंत्रता इत्यादि। लोक प्रशासन के क्षेत्र में सरकार का यह प्रथम दायित्व है कि वह आपसी कार्मिक नीतियों में इन विधियों, नियमों इत्यादि को प्राथमिकता के आधार पर समाविष्ट करे तथा इनका पालन सुनिश्चित करे। इसका प्रभाव न केवल प्रजातांत्रिक व्यवस्था, न्यायिक प्रणाली व समाज पर होगा बल्कि लोक प्रशासन कार्यकुशल, निष्पादक एवं प्रभावपूर्ण होगा एवं साथ–साथ नागरिकों का विश्वास सरकार व प्रशासन पर जमेगा।

लोक कार्मिक नीतियाँ सरकारी संगठनों पर भी गहन प्रभाव डालती हैं। सरकारी प्रशासनिक संगठनों में निष्पक्षता, तटस्थता, कार्य एवं निर्णय करने की स्वतंत्रता, स्वतंत्र कार्य प्रभार इत्यादि न केवल विकसित होते हैं बल्कि जनसेवा, जनहित एवं राष्ट्रसेवा को प्रभावी

बनाते हैं। इसके अतिरिक्त सरकारी प्रशासनिक संगठनों में योग्यता एवं कार्य कुशलता विकसित होती है। प्रशासनिक संगठन दबावों, भ्रष्टाचार, अनैतिकता एवं दुराचार से ग्रसित नही होते है। प्रशासनिक संगठनों के कर्मचारियों के मध्य सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध होते है और वे संगठन के उद्देश्यों की पूर्ति एक टीम के रूप में प्राप्त करने हेतु सतत् प्रयत्नशील रहते हैं जिसका कि प्रभाव सरकार व कर्मचारियों के मध्य सम्बन्धों पर भी पड़ता है और इन दोनों के मध्य सम्बन्ध कम तनावपूर्ण एवं सहयोग के बने रहते हैं जिससे कि लोक प्रशासन में हड़तालें, घेराव, धरना इत्यादि नहीं होते हैं जैसाकि ब्रिटेन में देखा जा सकता है। यही नही, बल्कि प्रशासनिक संगठनों की छवि अच्छी बनती है और जनता में उनके प्रति सदभावना एवं विश्वास बना रहता है। सरकार की उपयुक्त एवं विधि शासन सम्मत कार्मिक नीतियाँ कर्मचारियों में आत्म विश्वास, सम्मान, मनोबल, समर्पण एवं त्याग की भावना को बलवती करती हैं।

यद्यपि सरकार द्वारा लोक कार्मिक नीति के निर्माण में संविधान विधि एवं न्याय इत्यादि को प्राथमिकता देती है तथापि सामाजिक व्यवस्था, बदलते हुए अन्तर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय घटनाचक्रों, आर्थिक क्षेत्र के परिवर्तनों एवं राजनीतिक भूमिका को भी ध्यान में रखती है। इस हेतु सरकार कार्मिक नीतियों में अपवादों स्वरूप विभिन्न प्रकार के सामाजिक न्याय हेतु साधन यथा आरक्षण, लिंग प्राथमिकता, मानवीयता इत्यादि को भी स्थान देती है जैसाकि भारत में सरकारी सेवाओं में जातिगत आरक्षण, स्त्रियों को प्राथमिकता, मानवीय आधार पर कर्मचारियों की सेवाओं का नियमन सेवानिवृत्त लाभ आदि को दावा जा सकता है। यद्यपि इस प्रकार के प्रावधान कार्मिक नीतियों में संविधान संशोधन, विशेष प्रकार के कानून या अध्यादेश आदि के माध्यम से किये जाते है परन्तु वे न्यायिक समीक्षा के अन्तर्गत होते हैं। जिससे कि संविधान की मूल संरचना एवं भावना को संरक्षित किया जा सके। सरकार भी यह ध्यान रखती है कि अपवाद कार्मिक नीतियों में परिवर्तन किये जायें जबकि उनके लिए संस्तुति निष्पक्ष आयोगों, समितियों एवं महाविधिवेत्ताओ द्वारा की गई हो जिससे कि सरकार पर किसी प्रकार का आक्षेप न लगाया जा सके तथा बदनाम नहीं किया जा सके। फिर भी, यह ध्यान देने की बात है कि प्रजातांत्रिक व्यवस्था में जन आन्दोलन हिंसा मय एवं संख्यात्मक दबाव निरन्तर बने रहते हैं जोकि प्रत्यक्षत: लोक कार्मिक नीतियों में अपवादों को बढाते हैं अ ।र प्रशासनिक संगठनों को विभिन्न माध्यमों से प्रभावित करते है।

लोक कार्मिक नीतियों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण नीति स्टाफिंग या स्टाफ की भर्ती से सम्बन्धित नीतियाँ हैं क्योंकि सरकारी संगठनों में कर्मचारियों की भर्ती जनता एवं न्यायालयों द्वारा समीक्षित होती हैं। भारत जैसे विकासशील देश में सरकार की लोकप्रियता एवं निर्वाचन के दौरान सरकार से सम्बन्धित राजनीतिक दलों के प्रतिजन विभाग इस बात पर निर्भर कर सकता है कि सरकारी क्षेत्र में रोजगार के अवसर कर्मचारियों की भर्ती में वे कहाँ तक सफल रहे हैं। भारत के अनेक राज्यों के निर्वाचनों के अनुभव यह दर्शा चुके हैं कि राज सरकारें सरकारी क्षेत्र में कर्मचारियों की भर्ती को सतत् बनाये रखें और सरकारी संगठनों में युवा क्षेत्र को स्थान मिलता रहे।

लोक सेवाओं की निष्पक्षता में प्रतिबद्धता, तटस्थता में राजनीतिक दलों को सहयोग एवं निर्वाचन में सत्तारूढ राजनीतिक दल का समर्थन कर्मचारियों की भर्ती पद्धति से प्रभावित रहता

है। सरकार व राजनीतिक दल लोक सेवाओं में कर्मचारियों की भर्ती को आम निर्वाचन के दौरान अपने हथियार के रूप में इस्तेमाल करना चाहते हैं और लोकप्रियता हासिल करना चाहते हैं। अत: सरकार के लिए कर्मचारियों की भर्ती एक महत्वपूर्ण प्रश्न होती है। सरकारें अपने कर्मचारियों को अप्रसन्न करके शासन की सत्ता को संचालित नही कर सकती हैं।

इस इकाई में हम स्टाफिंग या कर्मचारियों की भर्ती नीति को मुख्य रूप से विश्लेषित करेंगे। भर्ती नीति के अन्तर्गत भर्ती का अर्थ उनके प्रकार, भर्ती की प्रकृति एवं क्षेत्र तथा भर्ती का महत्व समझाने का प्रयास करेंगे।

1.2 स्टाफिंग या कार्मिकीकरण का अर्थ

संगठन में स्टाफिंग (Staffing) करना या भर्ती करना एक दूसरे के कुछ अर्थो में पर्याप्त माने जा सकते हैं क्योंकि उनके सिद्धान्तों, नियमों एवं आधारों में समानता देखी जा सकती है। ग्लीन ओ स्टाहल (Glenn O. Stahl) ने अपनी पुस्तक "Public Personnel Administration" में तथा डॉ. एमपी. शर्मा ने अपनी पुस्तक 'लोक प्रशासन' में स्टाफिंग से अर्थ सरकारी सेवाओं में भर्ती से लिया है। हर्मन फाइनर ने भी अपनी पुस्तक "The Theory and Practice of Modern Governments" में स्टाफिंग से अर्थ लोक सेवाओं में भर्ती की व्यवस्थाओं से जोड़ा है जिसमें कि सरकारें विभिन्न तरीकों, माध्यमों एवं पद्धतियों से लोक सेवाओं में भर्ती करती हैं। फाइनर ने विभिन्न देशों के अध्ययनों के आधार पर यह स्पष्ट किया है कि प्रत्येक देश में लोक सेवाओं में कर्मचारियों की भर्ती के तरीकों, पद्धतियों एवं आधारों पर अलग– अलग प्रकार से जोर दिया जाता है जोकि उस देश की राजनीतिक, आर्थिक या सामाजिक स्थिति पर निर्भर करता है। मार्सटिन–मार्क्स (Morstein Marx) भी अपनी पुस्तक "Elements of Public Administration" में यह बताता है कि स्टाफिंग का अर्थ सरकारी सेवाओं का विभिन्न तरीकों से संचालन है जिसमें उनके भर्ती के तरीके प्रमुख है। वास्तव में, कार्मिक प्रशासन से जुडे उक्त विद्‌वान लेखक द्‌वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् की परिस्थितियों, सरकारों एवं उन देशों की परिस्थितियों के कारण अपनी परिभाषाओं में स्टाफिंग का अर्थ लोक सेवाओं में भर्ती से लेते हैं। परन्तु बाद की बदलती स्थितियों ने स्टाफिंग की परिभाषाओं को नया मोड़ दिया है जिसका कि उल्लेख प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग ने अपने प्रतिवेदन में किया। आयोग के अनुसार स्टाफिंग से अर्थ एक ऐसी कार्मिक व्यवस्था से समझा जा सकता है जोकि लोक सेवाओं में व्यावसायिकता, कार्यकौशल में विभिन्नताएं, कार्यात्मकता, को विकसित करती हों तथा सरकारी संगठनों में इनको निरन्तर बढ़ावा देती हों। भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली द्‌वारा 1969 में भारत सरकार की स्टाफिंग नीतियों पर सम्मेलन में यह मत व्यक्त किया गया कि लोक सेवाओं में ऐसे कार्मिकों की गहन आवश्यकता है जोकि सरकार की बदलती परिस्थितियों के अनुसार अपने आप को ढाल सकें। इस प्रकार सरकार में ऐसे स्टाफिंग (Staffing) या कार्मिकीकरण की आवश्यकता है जोकि सरकार की निरन्तरता, प्रभावशीलता एवं कार्यकुशलता को दर्शाएं। (हम यहाँ स्टाफिंग के हिन्दी शब्दार्थ में कार्मिकीकरण शब्द का प्रयोग करेंगे) इस सम्मेलन में वी. ए. पाई पन्दीकर, जे. एन. खोसला, ए. आर.

त्यागी. वी. सुब्रहमवयम, एम. वी. माथुर, टी.एन. चतुवैदी इत्यादि ने भी यह सहमति व्यक्त की कि कार्मिकीकरण से अर्थ व्यापक अर्थो में लिया जाना चाहिये तथा उसे केवल भर्ती तक सीमित नहीं किया जाना चाहिये। कार्मिकीकरण का अर्थ कार्मिक प्रशासन के उन अनेक क्षेत्रों से है जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कार्मिकों की कार्य कुशलता, प्रभावशीलता, नीतिगत विश्लेषण एवं जवाबदेयता पर प्रभाव डालते हैं तथा सरकारी सेवाओं को कार्यात्मक या गैर कार्यात्मक, व्यावसायिक या गैर व्यावसायिक, प्रबंधकीय या गैर प्रबन्धकीय इत्यादि श्रेणियों में विभक्त करते हैं तथा भर्ती से लेकर सेवानिवृत्ति तक के विभिन्न सिद्धान्तों, आधारों एवं पद्धतियों को देश व सामाजिक परिस्थितियों में अनेक अर्थो से परिभाषित करते है। आधुनिक समय में अर्थो से परिभाषित करते हैं। आधुनिक समय में बाजार– आधारित अर्थ व्यवस्था, लोक सेवाओं में निजीकरण, जन–निजी पार्टनरशिप (Public Private Partnership) एवं उदारीकरण ने कार्मिकीकरण कों अत्यधिक प्रभावित किया है तथा इसकी परिभाषा को अत्यन्त व्यापक बना दिया है। सन् 1990 के पश्चात् से कार्मिकीकरण, पर अनेक सम्मेलन अन्तर्राष्ट्रीय प्रशासनिक विज्ञान संस्थान,ब्रुसेल्स, विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष, एवं विभिन्न देशों के लोक सेवाओं से जुड़े अनेक संस्थानों ने आयोजित किये तथा कार्मिकीकरण शब्द को अत्यन्त विस्तृत बनाने में महत्वपूर्ण योगदान किया। अमेरिकन लोक प्रशासन सोसायटी, एवं विश्व बैंक ने अपने प्रतिवेदनों में कार्मिकीकरण के विभिन्न आयामों की समीक्षा कर के यह स्पष्ट करने का प्रयास किया कि कार्मिकीकरण का अर्थ लोक सेवाओं की कार्यकुशलता, व्यावसायिकता, जवाबदेयता इत्यादि से ही नहीं जुड़ा है बल्कि उभरती नवीन अर्थ व्यवस्थाओं में कार्मिकीकरण, मांग एवं आपूर्ति, प्रतिदान या प्रतिफल, अन्तर्राष्ट्रीय रोजगार बाजार, कार्मिक की क्षमता– विकास, शैक्षणिक–व्यावसायिक कुशलताएं, सूचना– प्रबन्धन, ज्ञान–प्रबन्धन, तकनीकी क्षमताएँ एवं नित नये अनुसंधान दृष्टिकोण से देखा जाना चाहिये। इस बात पर भी जोर दिया गया है कि सरकारी सेवाओं में कार्मिकीकरण कार्यक्षमता, कार्यभार, संगठन व देश की विरासतों, संस्कृति के उपयोग एवं लाभ लेने की क्षमता, सरकार के लाभ में हिस्सेदारी, एवं ज्ञान की मूल्य–वर्धिता इत्यादि के सन्दर्भ में भी देखा जाना चाहिये। कुल मिलाकर, 21 वीं शताब्दी में कार्मिकीकरण अनेक अर्थो, अनेक सन्दर्भों एवं अनेक परिस्थितियों में देखा जाने लगा है। चुँकि सरकार के कार्यो, भूमिकाओं एवं क्षमताओं में परिवर्तन आ रहा है अत: कार्मिकीकरण की परिभाषाओं को भी नित नये रूप दिये जा रहे हैं। कार्मिकीकरण का अर्थ कार्मिक प्रशासन से लेकर मानव विकास, क्षमता– विकास, बाजार– आधारित रोजगार व्यवस्थाएं, अन्तर्राष्ट्रीय संस्कृति आधारित शिक्षा व्यवसायीकरण, सूचना प्रोद्योगिकी, सूचना प्रबन्धन, इत्यादि तक समझा जाने लगा है परन्तु इसके मूल आधार समानता, स्वतंत्रता सरकार के दायित्व जबावदेयता, उत्तरदायित्वता एव योग्यता अपने स्थान पर अटल हैं तथा सार्वभौमिक एव सर्वव्यापी हैं।

कार्मिकीकरण के सन्दर्भ बदले हैं परन्तु मूल्य अपने स्थान पर अविचल एवं अटल हैं। सरकारी एवं निजी क्षेत्र की घटती दूरियाँ उनके पारस्परिक सहयोग एवं प्रतिस्पर्धात्मक बाजार व्यवस्था जैसे परिवर्तन होते हुए भी कार्मिकीकरण नहीं बदले हैं यद्यपि उनके आधारों,

मात्रात्मक उपभोग में कमी या बढ़ोतरी महसूस की जा सकती है जोकि स्थान या संस्कृति आधारित हो सकती है।

1.3 कार्मिकीकरण की प्रकृति

कार्मिकीकरण की प्रकृति को समझने के लिए हमें सर्वप्रथम सरकार की भूमिका को समझना होगा क्योंकि आधुनिक समय में सरकार की भूमिका को अनेक अध्ययनों एवं पुस्तकों में पुनर्भाषित किया गया है। लोक सेवाओं में कार्मिकीकरण सरकार की भूमिका के आधार पर किया जा रहा है। सरकार की भूमिका के आधार पर किया जा रहा है। सरकार की भूमिका एवं कार्मिकीकरण में अटूट गहरा सम्बन्ध है। सरकार की भूमिका में परिवर्तन मुख्यत: निम्न सन्दर्भों में देखा जा सकता है: प्रथम, सरकार की परम्परागत भूमिका मुख्यत: अत्यन्त संवेदनशील क्षेत्रों यथा सुरक्षा, मुद्रा, विदेश सम्बन्ध, परमाणु उपयोग, इत्यादि तक सीमित की जा रही है जिससे कि विश्व में प्रजातंत्र गहराई तक विश्व के सभी देशों में विकसित हो सके। द्वितीय, सरकार की भूमिका अन्य क्षेत्रों में शासक की जगह नियंत्रक की महसूस की जाने लगी है। सरकार के मुख्य कार्यो को छोड़कर अन्य सभी क्षेत्रों में सरकार नियामक की भूमिका अपनायेगी जिसमें कि न्यायपालिका उसकी नियंत्रक होगी। तृतीय, सरकार को आर्थिक–सामाजिक क्षेत्रों में उदारीकृत व्यवस्था बनाने हेतु परम्परागत दृष्टिकोण में परिर्वतन महसूस किया जा रहा है और राज्य ऐसे मामलों में उदार दृष्टिकोण अपनाने के लिए बाध्य है जोकि विभिन्न आर्थिक– सामाजिक बंधनों से ग्रस्त थे। उदारीकरण के दौर में सरकारें आर्थिक क्षेत्र का प्रबन्धन, निजी क्षेत्रों के लिए प्रतिबन्धित क्षेत्र खोलना, निजी क्षेत्र के सहयोग से निर्माण, संचालन ग्रहण एवं स्थानान्तरण (BOLT : Build, Own, Lease,Transfer सामाजिक क्षेत्र में महिलाओं के लिए विभिन्न योजनाएं लागू करना, सामाजिक विकास के लिए विभिन्न प्रोत्साहन योजनाएं इत्यादि, चतुर्थ, सरकार अपने कार्यो एवं भूमिका के लिए न केवल राजनीतिक स्तर पर जवाबदेय है बल्कि इनमें कमियाँ या गलतियाँ होने पर प्रशासनिक स्तर के अधिकारी व कर्मचारी भी व्यक्तिश: जवाबदेय होते हैं। अत: सरकारें वर्तमान समय में अपने कार्यो एवं भूमिका के लिए न केवल विधिक एवं राजनीतिक रूप से बल्कि प्रशासनिक स्तर पर भी उत्तरदायी एवं जबावदेय हो रही है। अन्त में, सरकार की भूमिका उसकी सक्रियता एवं सफलता से भी देखी जाने लगी है। जन सेवा से जुड़े कार्यो में सक्रिय एवं सफल सरकार आवश्यक समझी जाने लगी है जिसमें कि तकनीकी का बड़ा योगदान होता हैं। अत: सरकार को आधुनिक तकनीकी (E–Governance) एवं कार्य विशेषज्ञता से तैयार रहना होता है। कुल मिलाकर, सरकार की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण महसूस की जा रही है।

सरकार की उपर्युक्त भूमिका के सन्दर्भ में कार्मिकीकरण की प्रकृति भी अत्यन्त गहराई से प्रभावित हुई है तथा यह प्रभाव उस पर अनेक रूपों में देखा जा सकता है। लोकसेवाओं में कार्मिकीकरण हेतु संवैधानिक प्रावधान सर्वाधिक महत्वपूर्ण होते हैं जिनमें कि लोकसेवाओं का स्वरूप, प्रकृति एवं भूमिका निहित की जाती है जैसे कि भारत में संविधान के अनुच्छेद 309, 310 एवं 311 में लोकसेवाओं हेतु प्रावधान वर्जित किये जाये हैं जोकि लोकसेवाओं की प्रकृति एवं उनके सुरक्षा हेतु उठाये गये कदमों को बताते हैं।

कार्मिकीकरण में संवैधानिक प्रावधान यह दर्शाते हैं कि कार्मिक सेवा के दौरान निष्पक्षता, एवं सेवाभाव से कार्य कर सकें। भारत में कार्मिकीकरण की प्राथमिक प्रकृति निष्पक्ष, निरपेक्ष एवं सेवा के रूप में देखी जा सकती है। मौलिक अधिकारों में जो स्वतंत्रता वर्जित की गई उनमें सरकारी कर्मचारियां पर कुछ सीमाएं आरोपित की गई है जैसे कि संघ बनाने का अधिकार, लेख लिखने एवं प्रकाशित करना, हड़ताल का अधिकार इत्यादि पर आरोपित सीमाएं। सरकारी कर्मचारियों को सामान्य नागरिक से अतिरिक्त दर्जा दिया गया। कर्मचारियों को एक सीमित दायरे में कार्य करने तक ही स्वतंत्रता प्राप्त होती है।

ग्लीन स्टॉहल ने स्टाफिंग को चार अर्थो में परिभाषित किया है: –

1. मानवशक्ति नियोजन एवं सेवा में आकर्षण :
2. परीक्षा पद्वति एवं परीक्षा हेतु तरीके :
3. चयन सेवा से बाहर
4. चयन सेवारत कर्मियों में से :

स्टाहल के विचारो में स्टाफिंग या कार्मिकीकरण एक अत्यन्त कठिन कार्य है क्योंकि लोकसेवाओं में मानवशक्ति नियोजन, परीक्षा पद्वति एवं चयन न केवल कार्मिक नीति से जुड़े मुद्दे हैं वरन् इससे भी ज्यादा लोक कल्याण, मानवीय दृष्टिकोण, राजनीति दृष्टियाँ, सामाजिक परिप्रेक्ष्य एवं सांस्कृतिक धरोहरों इत्यादि से जुडे सवाल हैं जिनके कि उत्तर शासन एवं सत्ता के गलियारों मे सरकारों को भी ढूँढना मुश्किल पड़ता है। कार्मिकीकरण में जहाँ एक ओर आर्थिक पक्ष यथा बचत, अधिकतम श्रम एवं कार्य, संसाधन उपयोग, दक्षता कार्यभार इत्यादि महत्वपूर्ण होते है वहीं दूसरी ओर सामाजिक एवं सांस्कृतिक सरोकारों यथा जाति, धर्म, आरक्षण मूल निवास, भाषा इत्यादि को भी महत्वपूर्ण रूप से जगह देनी होती है जोकि अत्यन्त कठिन कार्य है। इसके अतिरिक्त, सेवा में आकर्षण बनाये रखने के लिए सार्थक (Affirmative) नीति एवं क्रियाएं सम्पन्न करनी पड़ती है जिससे कि योग्यतम, उच्च गुणवत्ता, शैक्षिक, सामाजिक वर्गो में सन्तुलन हेतु छूट, आरक्षण एवं योग्यता जांच में शिथिलताएं इत्यादि को भी कार्मिकीकरण में सुनिश्चित किया जा सके। उदाहरणार्थ, अमेरिका में योग्यता रक्षा मण्डल (Merit Protiction Board) समान अवसर भी सुनिश्चितता हेतु अलग से व्यवस्थाएं: एग्मेद/नस्लवाद के विरूद्ध विधियाँ एवं संस्थाएं स्थापित की गई हैं वैसे ही भारत में लोकसेवाओं में आरक्षण की सुनिश्चिता हेतु संसदीय समिति को प्रभावी बनाया गया है। इसी प्रकार, ब्रिटेन में लोक सेवाओं में नेतृत्व विकास हेतु समिति का गठन ऐसे उदाहरण है जो यह दर्शाते है कि लोक सेवाओं में आकर्षण बनाये रखने के लिए सरकारें बाध्य हैं। ये ऐसे तत्त्व हैं जोकि निजी क्षेत्र में सामान्यत: स्पष्ट रूप से सुनिश्चित नहीं हो पाते हैं। यह भी ध्यान देने की बात है कि कार्मिकीकरण में आकर्षण पैदा करने हेतु निजी क्षेत्र अन्य तरीके अपनाते हैं जोकि प्रत्यक्षत: शिक्षा के क्षेत्र से या शैक्षिक संस्थाओं से प्रत्यक्ष या प्रशिक्षण के माध्यम से भर्ती से जुड़े होते हैं जोकि सेवाओं में राजनीतिक प्रशासनिक एवं जनहित के कारण सम्भव: नहीं हो पाता है विशेष रूप से भारत जैसे विकासशील देश में।

स्टॉहल के अनुसार– कार्मिकीकरण में चयन पद्वति की महत्वपूर्ण भूमिका होती है क्योकि सरकारें जहां एक ओर आदर्श नियोक्ता है वहीं उसे साबित करने के लिए उसे आदर्श चयन पद्वति निर्धारित करनी होती है जिससे कि लागत से ज्यादा समानता, उद्देश्यपूर्णता, सुनिश्चिता एवं लोक सेवा के मानदण्डों को परिपूर्ण करना होता है। चयन–पद्धति में परीक्षाओं के प्रकार यथा लिखित परीक्षा, साक्षात्कार या अन्य प्रकार से परीक्षा का निर्धारण करना बड़ा महत्वपूर्ण होता है। परीक्षा में शैक्षिक योग्यता, अवसरों की समानता, आयु, अनुभव इत्यादि के मध्य सन्तुलन स्थापित करना होता है। व्यक्तित्व परीक्षण, भावनात्मक सन्तुलन, मनोवैज्ञानिक परीक्षण एवं आदतों में परिवर्तन इत्यादि को परीक्षा में सम्मिलित करना होता है जिससे कि भारत जैसे देश के कारण पूर्वाग्रह, व्यक्तिगत पसन्द इत्यादि चयन की पद्वति एवं उसके प्रकारों पर प्रभाव डाल सकते हैं। अत: स्टॉहल के अनुसार लोकसेवाओं में परीक्षा पद्वति कार्मिकीकरण पर गहन प्रभाव डालती है जिससे कि 'निर्धारित करना सरकार के लिए एक बड़ी चुनौती माना जा सकता है।

इससे भी बढकर सरकार के समक्ष एक बड़ी चुनौती एवं दुविधा चयन करने में यह है कि चयन रोजगार बाजार में से खुले रूप से या दूसरे शब्दों में सेवा के बाहर से की जायें अथवा सेवारत कर्मियों में से ही की जाये। खुले चयन या बंद व्यवस्था चयन की सरकार के समक्ष अलग अलग लाभ–हानि है जैसे कि अवस्थी एवं श्रीराम माहेश्वरी ने अपनी पुस्तक लोक प्रशासन में बताये है कि कर्मचारियों की प्रत्यक्ष भर्ती के लाभ ये है:

(अ) यह रीति प्रजातन्त्र के सिद्धान्त के बिल्कुल अनुरूप है। यह सभी के लिए समान अवसर प्रदान करती है, चाहे वे पहले से लोक सेवाओं मे हो या न हों। इस प्रकार प्रकटतः यह ऐसी उचित प्रणाली है जिसमें किसी प्रकार का कोई भेदभाव नहीं बरता जाता।

(आ) सेवि–वर्ग सम्बन्धी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु सरकार का क्षेत्र विस्तृत है। भीतर से भर्ती किये जाने पर इसका क्षेत्र उन कर्मचारियों तक ही सीमित हो जाता है जो पहले से ही लोक सेवाओं में है।

(इ) सरकार योग्य युवकों को अपनी ओर आकर्षित कर सकती है, अन्यथा युवकों के अन्य कार्यो में लग जाने की सम्भावना रहती है। इस रीति से सरकार विश्वविद्यालयों तथा शिक्षण संस्थाओं के सर्वोतम क्षेत्रों से वंचित रह जायेगी जिनकी सेवाऐं प्राप्त करने का उसे पूर्ण अधिकार हैं।

(ई) प्रत्यक्ष भर्ती के कारण योग्य कुशल नवयुवकों की निरन्तर सेवाएँ प्राप्त करने के शासन को अवसर होते हैं। यह प्राविधिक तथा व्यावसायिक क्षेत्रों में, जहाँ नवीन प्रविधियाँ तथा विकास निरन्तर तीव्रता से सामने आते रहते है, विशेष रूप से आवश्यक हैं। इस प्रकार, विभिन्न क्षेत्रों की प्रगति के साथ सरकार को कदम मिलाकर चलने के अवसर प्राप्त हो जाते है।

(उ) प्रत्यक्ष भर्ती के फलस्वरूप सरकार को नौजवान व्यक्तियों की नियमित सेवाएँ प्राप्त होती हैं, और देश की बदलती हुई सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों के अनुकूल लोक सेवाएँ बनी रहती हैं। इस प्रकार यह प्रणाली अवरोधक तथा परम्परावादी प्रवृत्तियों को रोक देती हैं।

इस प्रणाली के लाभ दूसरी रीति अर्थात् 'भीतर से भर्ती की रीति' की त्रुटियाँ हैं। इसके विपरीत, पहली प्रणाली की त्रुटियाँ दूसरी प्रणाली के लाभ हैं।' भीतर से भर्ती' प्रणाली के निम्नलिखित लाभ हैं :

(अ) इस प्रणाली द्वारा जिन व्यक्तियों को उच्चतर स्थानों पर नियुक्त किया जाता हैं उन्हें प्रशासन तथा सरकारी कार्य का पहले से पर्याप्त अनुभव होता हैं। यह अनुभव उन्हें अपने नवीन उत्तरदायित्वों को योग्यता तथा विश्वास के साथ निभाने में सहायता देता हैं।

(आ) कर्मचारियों को आगे बढ़ाने के बहुत से अवसर भर्ती की रीति के कारण प्राप्त होते हैं। कर्मचारी भर्ती प्रकार जान जाते हैं कि यदि वे कुशलता एवं निष्ठा के साथ काम करते रहेगें तो उनकी पदोन्नति होती रहेगी। इस प्रकार यह प्रणाली कर्मचारियों को भली प्रकार काम करने के लिए प्रोतराहित करती रहती है। इस प्रणाली से पुरस्कार और दण्ड दोनों की व्यवस्था होती है– कार्यक्षमता के लिए पुरस्कार और उसमें कमी होने पर दण्ड दिया जाता हैं।

(इ) पदोन्नति के फलस्वरूप जब कोई अधिकारी उच्च पदों पर पदोन्नत किये जाते हैं तो ऐसे कर्मचारियों को सरकारी कार्य का ज्ञान पहले से ही होता है। अत: उन्हें लम्बे प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं पड़ती। परिणामत: सरकार अतिरिक्त बोझ और व्यय से बच जाती है और लोक सेवा आयोग तथा भर्ती करने वाले अधिकारियों का दायित्व भी कम हो जाता है, अन्यथा प्रार्थियों की एक पूरी सेना के परीक्षण की ही आवश्यकता पड़ेगी।

(ई) यदि कर्मचारी की पदोन्नति के यथोचित अवसर प्राप्त होते रहें तो वे लोक सेवाओं में बने रहना सहज ही स्वीकार करेंगे। भविष्य में उन्नति की यही आशा उन्हें लोक सेवाओं की ओर आकर्षित करती हैं। यद्यपि सरकारी सेवाओं में निम्न श्रेणियों के कर्मचारियों को कम वेतन दिया जाता है, फिर भी लोग, इस आशा से कि उचित समय आने पर उन्हें पदोन्नत कर दिया जायेगा, इन छोटी सरकारी नौकरियों को स्वीकार कर लेते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में, जहाँ सामान्यत: यह प्रणाली प्रचलित नहीं है, कर्मचारियों में बहुत परिर्वतन होता रहता है। वहाँ सरकारी कर्मचारी यह समझते है कि उनके सामने एक अचल दीवार खड़ी है और इस भावना के परिणामस्वरूप वे सरकारी नौकरी छोड़कर निजी उद्यमों में नौकरी कर लेते है। कर्मचारियों का यह व्यापक निष्क्रम प्रशासन की दृष्टि से कभी लाभदायक नहीं हैं।

(उ) प्रत्यक्ष भर्ती की प्रणाली के अन्तर्गत अनिवार्य रूप से परीक्षाओं एवं साक्षात्कारों की व्यवस्था होती है। प्रार्थियों की योग्यताओं के निरीक्षण की प्रचलित युक्तियों से सदैव योग्य कर्मचारी ही चुने जाते हो ऐसी बात नहीं हैं। उनका कार्य ही उनके गुणों को स्पष्ट करता है। अत: आन्तरिक भर्ती की प्रणाली से कम से कम यह तो सुनिश्चित है कि उत्तरदायित्व के उच्च पद कुशल व्यक्तियों को ही सौंपे जाने चाहिए। कुछ भी हो, इस प्रणाली पर प्रत्यक्ष भर्ती की प्रणाली की अपेक्षा अधिक भरोसा किया जा सकता है। कोई भी सरकार उच्चतर उत्तरदायित्वों के पदों पर अनुभवहीन लोगों को नियुक्त करने का साध्य नहीं कर सकती, भले ही ऐसे व्यक्ति ऊपर से कुशल प्रतीत होते हों।

(ऊ) यह प्रणाली नौकरी के पेशे (career) का एक अपरिहार्य तत्व है। इसके विषय में हाइट ने कहा है कि "सरकारी सेवा एक ऐसा पेशा है जिसे व्यक्ति इस आशा से युवावस्था में ही ग्रहण कर लेता है कि वह आगे प्रगति कर सकेगा, तथा इसी आशा से वह (शासकीय सेवा में) सेवानिवृत्ति तक उसमें लगा रहता है। " सयुक्त राज्य अमेरिका की समाज विज्ञान गवेषणा परिषद द्वारा नियुक्त लोक सेवा सेवि–वर्ग विषयक जाँच आयोग ने अपने प्रतिवेदन (Batter Government Personnel, 1935) में टीका करते हुए कहा था कि "यदि शीर्षस्थ पद पर सामान्यत: बाहर से उन लोगों में से भर्ती की जाय जो काम को समझते ही नहीं है और सेवाओं के निम्नतम स्तर से शीर्षस्थ पदों तक पहुँचने में प्रभावपूर्ण बाधा होती है तो सेवाओं का अस्तित्व ही नहीं रह सकता।"

इस प्रणाली की प्रमुख त्रुटियाँ निम्नलिखित है :

(अ) अन्दर से भर्ती की प्रणाली (अर्थात् पदोन्नति) से प्रशासन में प्रवेश नहीं हो पाता है।

(आ) एक दृष्टि से यह प्रणाली भेदभाव की प्रणाली है। यह चयन के दायरे को संकुचित कर देती है क्योंकि प्रशासन के बाहर के व्यक्तियों को इससे वंचित रखा जाता है। इस अर्थ में यह रीति अप्रजातान्त्रिक है। भेदभाव की रीति के कारण इसके अधीन चयन का क्षेत्र संकुचित हो जाता है।

(इ) इसे एक प्रकार से बन्द या अवरूद्ध लोक सेवा व्यवस्था कह सकते हैं। इसमें 'पार्श्वीय प्रदेश' के पूरी तरह हतोत्साहित किया जाता है जिसमें कर्मचारी को निरन्तर एक अभिनव दृष्टिकोण प्राप्त होता रहता है।

(ई) इस रीति में अनुभव को महत्व दिया जाता है और विश्वविद्यालय शिक्षा प्राप्त प्रतिभाशाली युवकों की उपेक्षा की जाती है। इस प्रकार यह प्रणाली प्रशासन को नवीन ज्ञान से वंचित रखती है, जो उचित नहीं है।

कार्मिकीकरण की नीतियों पर सर्वाधिक प्रभाव राज्य व सरकार की भूमिका का पड़ा हैं। कार्मिक नीतियाँ विशेषकर भर्ती से सम्बन्धित नीतियाँ संविधान की मूल भावना, जिसमें समानता प्रमुख है, एवं सरकार के कल्याणकारी कदम उल्लेखनीय हैं। कार्मिकीकरण में सार्थकता (Affirmativeness) कल्याण के रूप में एवं योग्यता आवश्यकता के रूप में प्रतिपादित की गई है। कार्मिकीकरण की प्रकृति में सामाजिक जुड़ाव (Social inclusion) व योग्यता का समावेश करने का प्रयास किया जा रहा है। सामाजिक जुड़ाव के लिए आरक्षण नीतियाँ एवं योग्यता हेतु प्रतियोगिता परीक्षाएं महत्वपूर्ण समझी जा रही हैं। यद्यपि यह बात विवादास्पद है कि क्या आरक्षण सामाजिक जुड़ाव का साधन है? फिर भी, कार्मिकीकरण की प्रकृति में योग्यता की ओर कम झुकाव देखा जा सकता है जोकि आरक्षण के कारण प्रतियोगी परीक्षाओं की महता को कम आँकता हैं। सरकार की कार्मिकीकरण नीतियों में सामाजिक कल्याण अत्यन्त आवश्यक है योग्यता का महत्व कम।

कार्मिकीकरण की प्रकृति में एक महत्वपूर्ण बात है कि संविधान के प्रावधानों के अनुसार लोकसेवा की तटस्थता सुनिश्चित की जाये। अत: ऐसे प्रावधान नीतियों में रखे जायें जोकि भर्ती एव कार्यकाल के दौरान लोकसेवकों को राजनीतिक रूप से तटस्थ बनाये रख सकें। अत: योग्यता

आधारित भर्ती एक स्वतंत्र एवं निष्पक्ष संस्था द्वारा की जाये तथा लोक सेवकों के कार्यकाल के दौरान उन पर प्रतिबन्ध, सीमाएं एव सुरक्षाएँ प्रदान की जायें कि उन्हें राजनीतिक रूप से प्रभावित करने की स्थिति एवं क्षमता कम से कम हो। इसलिए लोकसेवकों के संघ व हड़ताल के अधिकार पर सीमाओं का आरोपण, कार्यकाल के दौरान सुरक्षा एवं निश्चित आयु पर ही सेवानिवृत्ति, लाभ इत्यादि प्रदान किये जाते हैं जिससे कि कार्मिकों को निडर, निष्पक्ष एवं स्वतंत्र होकर विधि एवं नियमों के अनुसार कार्य करवाया जा सके।

1.4 कार्मिकीकरण का क्षेत्र

उच्च लोक सेवाओं में नीति निर्माण के स्तर पर नियुक्ति हेतु सेवाओं को कार्यात्मक सेवाओं की श्रेणी में रखा गया है जिससे कि एक पद से दूसरे पद पर पहुँचने के लिए अधिकारियों को चयन मण्डल के समक्ष से गुजरना होता है ओर वे स्वतः पदोन्नति व्यवस्था से नीति–निर्माण के स्तरों तक नहीं पहुँच सकते। प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग ने सिफारिश की नीति उच्च नीति–निर्माण के पदों हेतु एकीकृत ग्रेड व्यवस्था लागू की जा सकती है जिससे कि अधिकारियों के वेतन पर सन्तुष्टि प्रदान की जा सके। नीति निर्माण के पदों पर वे ही अधिकारी नियुक्त किये जाते है जोकि सरकार की दृष्टि में क्षमतावान, प्रबन्धकीय सक्षमता विश्लेषण की शक्ति, तात्कालिक परिस्थितियों का बारीकी से विश्लेषण एवं विचारों की स्पष्टता बनाये रख सकें। नीति निर्माण के स्तर पर पदों को कार्मिक सेवाओं के माध्यम से भरा जाता है। कार्यात्मक सेवाएं वे मानी जाती है जोकि एक विषय विशेष में ज्ञान एवं सानिध्यता को बनाए रखती हैं जैसे कि आयकर सेवाएं, अभियांत्रिकी सेवाएं इत्यादि। यद्यपि भारतीय प्रशासनिक सेवा को कार्यात्मक सेवाओं से इतर सेवाओं में रखा गया है तथापि इस सेवा के अधिकारी कार्मिक, वित्तीय प्रशासन इत्यादि में विशेषज्ञ हो सकते है अत: एक विशेष दृष्टि में सेवा को भी कार्यात्मक सेवा के रूप में देखा जा सकता है। प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग ने भारतीय प्रशासनिक सेवा को भी कार्यात्मक दृष्टि से देखने का प्रयास किया परन्तु इस बात पर आयोग में भी मत मतान्तर बना रहा है।

सरकार की यह अपेक्षा होती है कि भारतीय प्रशासनिक सेवा को विशेषज्ञ सेवा न बनाकर सामान्य जन की सेवा हेतु सेवा रखा जाये जिससे कि इस सेवा के अधिकारी राजनीतिक प्रशासनिक अधिकारी बने रह सके। भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी अपनी सेवा के दौरान विभिन्न प्रकार की राजनीतिक एवं प्रशासनिक स्थितियों से गुजरते हैं अत: उनके अनुभव नीति निर्माण के स्तर पर समन्वित एवं वृहद दृष्टिकोण लिये होते हैं जिसका कि लाभ सरकार को कई प्रकार से प्राप्त होता है। चुँकि सरकार के कार्यो में निरन्तर जटिलताएं बढ़ रही है। अत: यह डर बना हुआ है कि भारतीय प्रशासनिक सेवा इन जटिलताओं की दृष्टि से असफल न हो जाये। अत: कार्यात्मक सेवाओं को और अधिक सक्षम एवं कार्यशील बनाया जाये। यह माना जा सकता है कि विशेषज्ञता वाले संगठनों यथा स्टील अथॉरिटी ऑफ इण्डिया, एअर इण्डिया, रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया, सिक्योरिटी एक्सचेंज बोर्ड ऑफ इण्डिया जैसे संगठनों में भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों के स्थान पर विषय विशेषज्ञ सेवाओं के अधिकारियों को स्थान दिया जाये। केन्द्रीय सचिवालय में शीर्ष नीति पदों पर भी कार्यात्मक सेवाओं के ऐसे अधिकारियों को स्थान

मिले जोकि इन विषयों पर अन्तराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त विशेषज्ञता हासिल किये हुए हों। इस हेतु कार्यात्मक सेवाओं के अधिकारियों को उच्च शिक्षा एवं प्रशिक्षण हेतु भारतीय प्रबन्ध संस्थान, प्रबन्ध विकास संस्थान, इण्डिया बिजनेस स्कूल, व्हार्टन बिजनेस स्कूल इत्यादि में भेजा जाने लगा है।

अखिल भारतीय प्रशासनिक सेवाओं में संवर्ग आवंटन एवं उनका प्रशासनिक स्थापन भारत सरकार के कार्मिक एवं प्रशिक्षण विभाग के द्वारा किया जाता है जबकि पुलिस सेवा में गृह मंत्रालय एवं वनसेवा हेतु वन मंत्रालय दारा किया जाता हैं। संवर्ग आवंटन में ये मंत्रालय राज्य सरकारों द्वारा भेजी गई पदरिक्ति की सूचना, प्रतिनियुक्त की आवश्यकता, राज्य सेवाओं से पदोन्नतियाँ एवं सेवानिवृत्ति से उत्पन्न होने वाले पर इत्यादि को आधार मानकर संवर्ग आवंटन करते हैं। समय–समय पर केन्द्र एवं राज्य सरकार बैठकें करके इन संवर्गों की संस्था की समीक्षा करते है। यह ध्यान देने की बात है कि संवर्गों के आवंटन में केन्द्र एवं राज्य सरकारों के मध्य तारतम्यता, राजनीतिक सांमजस्य एवं प्रशासनिक सेवाओं के अधिकारियों के मध्य विचार विमर्श तत्व होते हैं। संवर्ग आवंटन में अधिकारी की सेवा अवधि अनुभव, शैक्षणिक योग्यता एवं कार्यक्षमता को भी ध्यान में रखा जाता है। संवर्गों में परिवर्तन प्रशासनिक अधिकारियों की प्रतिनियुक्ति विवाह एवं कार्यो के आधार पर किया जा सकता है। प्रशासनिक सेवा में भर्ती के समय संवर्ग आवंटन का आधार योग्यता सूची में स्थान एवं उम्मीदवार कार्यदक्षता को भी ध्यान में रखा जाता है तथापि कभी–कभी इस आवंटन में राजनीतिक प्रभाव, प्रशासनिक जोड–तोड़ एवं नियमों की लोचशीलता प्रभावी होती है। प्रशासनिक सुधार आयोग 1969 के प्रतिवेदन में यह सिफारिश की गई कि कार्यात्मक क्षेत्रों में संवर्गों का आवंटन अधिकारियों के प्रशिक्षण एवं पदों पर अनुभव को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिये। संवर्गों में गतिशीलता बनाये रखने के लिए एकीकृत ग्रेड संरचना बनाई जानी चाहिये जिससे कि अधिकारी संवर्ग परिवर्तन पर तुरन्त जाने के लिए तैयार रहें तथा पदोन्नति का भी अनुभव करें। पंचम वेतन आयोग 1996 ने भी इसी प्रकार की सिफारिश की जिससे कि लोकसेवा में वेतन एवं पद का आकर्षण बना रहे तथा प्रशासनिक अधिकारियों को सन्तुष्टि भी मिल सके ।

1.5 सारांश

लोक सेवाओं में कार्मिकीकरण अत्यन्त जटिल समस्या माना गया है क्योंकि लोकसेवाएं न केवल आदर्शो, नैतिकता एवं सांगठनिक आवश्यकताओं से जुडी हैं बल्कि इससे कर्मचारी की पद हेतु उपयुक्तता, राजनीतिक आवश्यकताएँ, मानवीय आधार, सरकार की छवि, आर्थिक दृष्टिकोण, सांस्कृतिक दवाब इत्यादि भी अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अत: कार्मिकीकरण सरकार के लिए चुनौतीपूर्ण दुविधाओं से परिपूर्ण एवं विरोधाभासों से भरा दुष्कर कार्य है। कार्मिकीकरण पर गत 150 वर्षो में अनेक आयोग, समितियाँ एवं मंत्रालय प्रतिवेदन तैयार किये गये जिनमें मुख्य रूप से इस बात पर जोर दिया गया कि कार्मिकीकरण में कार्यकुशलता, योग्यता–वरिष्ठता, तटस्थता एवं निष्पक्षता को ज्यादा से ज्यादा सुरक्षित किया जाये जिससे कि प्रजातंत्र में संसदीय शासन व्यवस्था के अनुरूप सरकार का संचालन किया जा सके तथा संविधान की आधारभूत व्यवस्थाओं को बनाये रखा जा सके। कार्मिकीकरण में

सर्वाधिक महत्वपूर्ण उद्देश्य संविधान की रक्षा, विधि का शासन एवं जनहित को सुरक्षित करना होता है अत: योग्यताधारी उम्मीदवार से पदों को भरा जाने का प्रयास होना चाहिये। इसके अतिरिक्त, लोकसेवा को जनकल्याण के लिए संचालित करना सरकार का प्रमुख दायित्व है अतः लोकसेवक कुशल एवं प्रभावी होने चाहिये।

कार्मिकीकरण के सिद्धान्त, पद्धतियाँ एवं तरीके सार्वभौमिक एवं अचल हैं परन्तु बलदली आर्थिक परिस्थितियों ने उनमें राजनीतिक एवं आर्थिक कारकों को अधिक महत्वपूर्ण बना दिया है जिससे कि लोक सेवाओं का भी बाजारीकरण, व्यापारीकरण एवं उपयोगी–अनुपयोगीकरण हो रहा है। परिणामतः लोक सेवाओं से स्थायित्व, तटस्थता एवं निष्पक्षता कम हो रही है और कार्मिकीकरण के आधार संविदात्मक राजनीतिक एवं स्पष्टता: प्रतिबद्धताएँ बनते जा रहें हैं। भारत में लोक सेवाओं के कार्मिकीकरण में राजनीतिक प्रभाव निरन्तर बढ रहा है। अनेक आयोगों, समितियों एवं व्यक्तियों की निरन्तर सिफारिशों के बावजूद लोक सेवाओं के कार्मिकीकरण में मूल परिवर्तन दृष्टिगोचर नही हो रहा है। राजनीतिक परिस्थितियों के कारण दृढ राजनीतिक इच्छा शक्ति कमजोर है जिसके कारण लोक सेवाओं के विकल्प, परिवर्तन एवं विकास के नये आयाम नहीं खोजे जा सके अथवा लागू नहीं किये जा सके। लोक सेवाओं के कार्मिकीकरण की समस्या सुलझाने के अवसर अभी तक दृष्टिगोचर नहीं हुए हैं। फिर भी, हम बाजार की शक्तियों के दबाब को देखते हुए कार्मिकीकरण में परिवर्तन की आशा कर सकते हैं।

1.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. कार्मिकिकरण का अर्थ प्रकृति एवं क्षेत्र की विवेचना कीजिए?
2. कार्मिकिकरण का विकासशील देशों के सन्दर्भ में विश्लेषण करिये एवं सुझाव दीजिए

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ओ. ग्लीन स्टॉहल, "पब्लिक पर्सोनेल एडमिनिस्ट्रेशन", नई दिल्ली : आक्सफोर्ड पब्लिशिंग, 1962
2. भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, " पर्सोनेल एडमिनिस्ट्रेशन ", नई दिल्ली, 1970
3. अवस्थी एवं माहेश्वरी, " लोक प्रशासन " लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा – 1980
4. सिद्धार्थ शंकर, " पब्लिक पर्सोनल एडमिनिस्ट्रेशन ", गायत्री पब्लिकेशन्स, बम्बई, 1987
5. सक्सेना, प्रदीप " पर्सोनेल एडमिनिस्ट्रेशन एण्ड मैनेजमेण्ट ", जयपुर : प्रिंटवेल, 1987
6. गोयल, एस. एल. , " पब्लिक पर्सोनेल एडमिनिस्ट्रेशन," दिल्ली : स्टर्लिंग पब्लिशर्स, 1987
7. पंचम वेतन आयोग प्रतिवेदन, 1996
8. सरकारिया आयोग प्रतिवेदन, 1985

इकाई–2

सामान्य तथा विशेषज्ञों के विशिष्ट संदर्भ में लोक सेवाओं का वर्गीकरण, श्रेणीकरण एवं एकीकरण

इकाई की रूपरेखा –

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 लोक सेवाओं के वर्गीकरण का आशय

2.3 लोक सेवाओं का वर्गीकरण–प्रणालियाँ

- 2.3.1 पद वर्गीकरण प्रणाली
- 2.3.2 श्रेणी (पदक्रम) वर्गीकरण की स्थिति

2.4 भारत में वर्गीकरण की स्थिति

2.5 लोक सेवाओं का वर्गीकरण

2.6 सामान्यज्ञ विशेषज्ञ से आशय

- 2.6.1 ऐतिहासिक परिदृश्य
- 2.6.2 सामान्यज्ञ तथा विशेषज्ञों के मध्य विवाद के कारण
- 2.6.3 विशेषज्ञों के पक्ष में तर्क
- 2.6.4 सामान्यज्ञो के पक्ष में तर्क

2.7 सामान्यज्ञों तथा विशेषज्ञों की समस्या के निराकरण के उपकरण

- 2.7.1 प्रशासनिक सुधार आयोग की अनुशंसाएं (सिफारिश)

2.8 सारांश

2.9 शब्दावली

2.10 अभ्यास प्रश्न

2.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

2.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढने के बाद आप –

- कार्मिक प्रशासन में वर्गीकरण, वर्गीकरण के प्रकार, वर्गीकरण से लाभ–हानि के बारे में जान सकेंगे,
- लोक सेवाओं के श्रेणीकरण पर चर्चा कर सकेंगे,
- सामान्यज्ञ के श्रेणीकरण पर चर्चा कर सकेंगे,
- सामान्यज्ञ तथा विशेषज्ञों के आशय का वर्णन कर सकेंगे,
- सामान्यज्ञ तथा विशेषज्ञों के पक्ष में तर्क कर सकेंगे,

- सामान्यज्ञों व विशेषज्ञों की समस्या हल करने के तरीकों जैसे एकीकरण इत्यादि का वर्णन कर सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

कार्मिक प्रशासन में सामान्यज्ञ तथा विशेषज्ञों की भूमिका अहम है। इन दोनों के मध्य स्वच्छ सम्बन्धों से ही प्रशासन ठीक ढंग से काम कर सकता है। लोक सेवाओं के वर्गीकरण, श्रेणीकरण भी प्रशासन को स्वच्छ बनाए रखते हैं तथा वर्गीकरण, श्रेणीकरण भी सामान्यज्ञों एवं विशेषज्ञों की भूमिका को स्वच्छ बनाता है। सामान्यज्ञों एवं विशेषज्ञों की समस्या हल करने के अनेक तरीकों में से एकीकरण एक है। जो दोनों को एकता प्रदान करता है। सामान्यज्ञ एवं विशेषज्ञ विवाद भारत में ही नहीं ब्रिटेन में भी चला आ रहा है और यह विशेषज्ञ सेवाओं के पैदा होने से हुआ है ।

2.2 लोक सेवाओं के वर्गीकरण का आशय

आधुनिक राज्य में लोक सेवा प्रबन्धन के लिए सरकार के कार्मिकों का उचित और व्यवस्थित वर्गीकरण बहुत आवश्यक है।

डब्ल्यू. एफ. विलोबी के अनुसार, "सार्वजनिक रोजगार का वर्गीकरण और मानकीकरण वह प्रारम्भिक बिन्दु या वह आधार है जिस पर कार्मिकों का सारा ढाँचा टिकना चाहिए।"

हर्मन फाइमर का कहना है, "भर्ती की क्षमता, तर्कसंगत पदोन्नति की सुसंगठित प्रणाली के निर्माण की संभावना और विभिन्न विभागों में कार्यरत लोगों के साथ समान व्यवहार उचित वर्गीकरण पर ही निर्भर है।"

डिमॉक तथा डिमॉक, "वर्गीकरण का अर्थ है तुलनात्मक कठिनाइयों का उत्तरदायित्वों के अनुसार पदसोपान के रूप में पदों को छांटना और श्रेणीबद्ध करना।"

एल. डी. व्हाइट, "सम्पूर्ण पद वर्गीकरण वह योजना वह ढांचा है, जिस पर लोक सेवाओं की पदाधिकारी आवश्यकताओं का निर्माण हुआ है। वह सार्वजनिक रोजगार से संबंधित विभिन्न प्रकार के कार्य एवं उत्तरदायित्व के तार्किक विश्लेषण का परिणाम है।"

मार्सटीन मार्क्स, "वर्गीकरण का अर्थ कर्त्तव्यों एवं अपेक्षित योग्यताओं की समानता के आधार पर पदों को समूहबद्ध करना है।"

संक्षेप में वर्गीकरण से अभिप्राय है उन सभी पदों को, जिनके कर्त्तव्य तथा उत्तरदायित्व बहुत कुछ मिलते–जुलते तथा एक से होते हैं, भर्ती, प्रतिफल और अन्य कर्मचारी संबंधी मामलों की दृष्टि से एक साथ वर्गीकृत कर दिया जाना चाहिए।

2.3 लोक सेवाओं का वर्गीकरण – प्रणालियाँ

दुनिया में वर्गीकरण की दो अलग– अलग प्रणालियां है–पद (कर्त्तव्य) वर्गीकरण और श्रेणी वर्गीकरण। पद वर्गीकरण की प्रणाली संयुक्त राज्य अमेरिका, फिलीपीन्स, ताईवान तथा कनाडा ने अपनायी है। पद या दायित्व वर्गीकरण लोकतंत्र से मेल खाता है क्योंकि इसका मूल आधार है 'समान काम के लिए समान वेतन'। श्रेणी वर्गीकरण भारत, ब्रिटेन, पाकिस्तान, फ्रांस,

जर्मनी, मलेशिया आदि देशों में प्रचलित है। इस वर्गीकरण का आधार कर्मचारी का दर्जा या उसकी व्यक्तिगत स्थित होती है, न कि पद संबंधी उसके दायित्व एवं कर्त्तव्य।

2.3.1 पद (कर्त्तव्य) वर्गीकरण

वर्गीकरण की इस प्रणाली को ड्यूटी वर्गीकरण भी कहते हैं। इसमें पदों का वर्गीकरण ड्यूटियों अर्थात् कार्यभारों, उत्तरदायित्वों तथा योग्यताओं के आधार पर किया जाता है। दूसरे शब्दों में, पद का वर्गीकरण काम की प्रकृति के अनुसार किया जाता है न कि पद पर बैठे व्यक्ति के अनुसार।

वर्गीकरण की इस प्रणाली की सबसे निचली आधारभूत इकाई पद है। पद उन अनेक ड्यूटियों और उत्तरदायित्वों का समूह है, जो किसी कर्मचारी को सौंपी जाती है। पद और पदस्थ में अंतर किया जाता है। कोई पद किसी समय भरा या खाली हो सकता है और वर्गीकरण के लिए उसका कोई अर्थ नहीं होता। इसके अतिरिक्त कर्मचारी की पदस्थिति और उसका वेतन उसकी ड्यूटियों और उत्तरदायित्वों पर निर्भर होता है। इरर प्रकार के अनेक पदों को मिलाकर एक वर्ग बनता है। ओ ग्लेन स्टाहल के शब्दों में वर्ग, पदों का एक समूह है जो भिन्न–भिन्न रोजगारों की प्रक्रियाओं के प्रति समान व्यवहार को न्यायोचित ठहराने के लिए उनके कार्यभार और उत्तरदायित्वों में समान होते हैं। अत: वर्ग पदों का एक ऐसा समूह है जिनका कार्यभार और उत्तरदायित्व एवं कठिनाई के स्तर भी एक समान होते हैं। एक वर्ग के अन्तर्गत आने वाले सभी पदों के लिए योग्यता की अपेक्षाएं तथा उनके वेतनमान भी समान होते हैं ।

पद वर्गीकरण प्रणाली के लाभ इस प्रकार हैं –

1. यह उच्च स्तरीय विशेषज्ञता उपलब्ध कराती है। अत: यह विशेषज्ञ सेवाओं के लिए उपयुक्त है।
2. यह समान काम के लिए समान वेतन के सिद्धान्त की पुष्टि करता है। इस प्रणाली में कर्मचारियों को उनके काम की कठिनाई तथा उत्तरदायित्व के अनुसार भुगतान किया जाता है।
3. यह प्रत्येक काम की विषयवस्तु की विस्तृत व्याख्या करती है। अत: कर्मचारी के कार्य निष्पादन का मूल्यांकन वस्तुगत और तर्कसंगत हो सकता है।
4. यह उन वैज्ञानिक मानदण्डों के सूत्रीकरण के प्रति संप्रेषणशील है जिन पर कार्मिक प्रशासन के विभिन्न पक्षों को संगठित किया जा सकता है, जैसे कि भर्ती, प्रशिक्षण, पदोन्नति, जनबल नियोजन, कैरियर विकास इत्यादि।
5. यह वरिष्ठता की अपेक्षा योग्यता पर अधिक बल देती है क्योंकि सम्पूर्ण लोक सेवा में प्रतियोगिता को प्रेरित करती है।
6. काम की अपेक्षाओं तथा पदस्थ की योग्यता के बीच मेल रहता है।
7. यह निजी क्षेत्र से सरकारी सेवा में पार्श्व प्रवेश को आसान बनाती है।
8. इसमें एक मजदूर और उच्च प्रबन्धन के उत्तरदायित्व की सुस्पष्ट सीमाएं हैं।

9. सेवा के संबंध में यह राजनीतिक तथा व्यक्तिगत भेदभाव का अंत करती है। कारण यह है कि एक वर्ग के सभी कर्मचारियों के साथ एक–सा व्यवहार होता है।
10. यह एक समान नाम पद्धति अपनाने को सहज बनाती है।

पद वर्गीकरण प्रणाली से हानियां निम्नलिखित हैं –

1. यह कार्मिक प्रशासन में कठोरता पैदा करती है। इस प्रकार यह अनुप्रस्थ और उधव्रस्थ गतिशीलता में बाधक है।
2. यह विस्तृत प्रणाली होने से अनेक वर्ग पैदा करती है, अत: इसकी तैयारी में अधिक समय और धन लगता है।
3. इस प्रणाली में वर्गीकरण की व्यवस्था थोड़े ही समय में पुरानी पड़ने लगती है। अत: आधुनिक बनाए रखने के लिए इसमें लगातार परिवर्तन करना पड़ता है।
4. इससे कर्मचारी अपने पदस्थिति और वेतन को लेकर सदा असुरक्षित महसूस करते हैं। अत: कर्मचारियों की ओर से अपने लिए कार्य संबंधी अधिक अनुकूल वर्णन तथा अपनी पदस्थिति को ऊंचा करने का दबाव लगातार बना रहता है।
5. यह विकासशील समाजों के लिए उपयुक्त नहीं जिनमें सामाजिक– आर्थिक रूपान्तरण तेजी से हो रहे हैं, क्योंकि जिलाधीश जैसे अनेक अधिकारियों के कार्यभारों और उत्तरदायित्वों की सुस्पष्ट व्याख्या नहीं की जा सकती है।
6. इसको लागू करना कठिन है क्योंकि इसके लिए तरह–तरह की परिष्कृत तकनीकी कुशलताओं की आवश्यकता होती है।

2.3.2 श्रेणी (पदक्रम) वर्गीकरण प्रणाली

पद वर्गीकरण के विपरित पदक्रम वर्गीकरण पदस्थों के पदक्रम और व्यक्तिगत पदस्थिति का वर्गीकरण है या यूं कहे कि कर्मचारियों का वर्गीकरण उनके पदक्रम के अनुसार श्रेणीबद्ध क्रम में किया जाता है। इस प्रणाली में वर्गीकरण काम का नहीं, कर्मचारियों का होता है। प्रत्येक कर्मचारी को एक निश्चित वर्ग में रखा जाता है। इस प्रकार लोकसेवा को पद के नहीं, पदस्थ के आसपास संगठित किया जाता है जो एक मोटे तौर पर परिभाषित समूह या सेवा का सदस्य होता है। कर्मचारी का वेतन और उसकी पदस्थिति समूह या सेवा में उसके पदक्रम पर निर्भर होती है न कि तैनाती पर। अन्य शब्दों में कर्मचारियों के वेतन और उसकी पदस्थिति का निर्धारण उस सेवा के संदर्भ में किया जाता है जो भर्ती के बाद उसे सौंपी गई है। सदस्य चाहे व केन्द्रीय सचिवालय में काम करे या राज्य के सचिवालय में या किसी अन्य संगठन में, प्रत्येक स्थिति में उसका वेतन और उसकी पदस्थिति एक समान रहेगी। वास्तव में अखिल भारतीय सेवाएं (आई. ए. एस., आई. पी. एस. और आई. एफ. एस.) पदक्रम वर्गीकरण प्रणाली के आदर्श उदाहरण हैं।

पदक्रम वर्गीकरण के लाभ इस प्रकार हैं –

1. कार्मिक प्रशासन में यह लचीलापन लाता है। अत: अंतरविभागीय स्थानान्तरण आसानी से किए जा सकते हैं।

2. यह लोक सेवाओं के सामान्य संवर्ग के लिए अधिक उपयुक्त है। कारण यह है कि यह कर्मचारी के सामान्य गुणों पर ज्यादा जोर देता है न कि विशेषज्ञ गुणों पर।
3. यह सम्पूर्ण लोक सेवा के प्रति निष्ठा को प्रोत्साहन देती है न कि इसके लिए पद/पदस्थिति के प्रति।
4. यह वर्गीकरण की सामान्य या कम विस्तृत व्यवस्था है जिसमें वर्गो की संख्या थोड़ी होती है। अत: इसकी तैयारी में पैसा और समय कम लगता है।
5. इस प्रणाली के वर्गीकरण का प्रयोग लम्बे समय तक किया जा सकता हैं, अत: इस व्यवस्था को अक्सर बदलने की जरूरत नहीं होती है।
6. यह कर्मचारियों को उनकी पदस्थिति तथा वेतन के बारे में अधिक सुरक्षित महसूस कराता है क्योंकि वे पद से बंधे नहीं होते और उन पर पदा पदस्थिति की ड्यूटियों तथा उत्तरदायित्वों में परिवर्तन से कोई प्रभाव नहीं पड़ता।
7. पद वर्गीकरण के विपरित इसको समझना और लागू करना आसान है।
8. यह लोक सेवाओं के कैरियर पर जोर देता है, अत: सेवाओं में गतिशीलता को प्रोत्साहित करता है।
9. ये सेवाओं में सक्षम कार्मिकों को आकर्षित करता है।

पदक्रम वर्गीकरण से निम्नलिखित हानियां हैं –

1. यह लोकसेवकों में विशेषज्ञता. को बढ़ावा नहीं देता अत: यह–विशेषज्ञ सेवाओं के लिए उपयुक्त नहीं है।
2. यह समान काम के लिए समान वेतन का उल्लंघन करता है। कारण यह है कि इस प्रणाली में कर्मचारियों का वेतन उनके काम की कठिनाईयों. तथा उत्तरदायित्वों से बंधा नहीं होता।
3. यह किसी काम की विषय वस्तु को विस्तार से निर्दिष्ट नहीं करता, अत: किसी कर्मचारी के काम का मूल्यांकन मनोगत हो सकता है।
4. इससे वर्ग विभेदों और सामंती प्रवृत्तियों की बू आती है क्योंकि यह व्यक्ति के आसपास घूमता है न कि प्रद के।
5. यह उन वैज्ञानिक और वस्तुगत मापदण्डों की तैयारी के प्रति संप्रेषणशील नहीं है जिन पर कार्मिक प्रबन्ध के भर्ती, पदोन्नति, जनबल, नियोजन और कैरियर विकास जैसे विभिन्न पक्षों को संगठित किया जा सकता है।
6. काम की अपेक्षाओं और पदस्थ की योग्यताओं के बीच कोई मेल नहीं होता।

2.4 भारत में वर्गीकरण की स्थिति

भारत ने पदक्रम वर्गीकरण प्रणाली को अपनाया है। हमारे देश में सेवाओं का वर्गीकरण 1930 के लोक सेवा नियम द्वारा नियन्त्रित हैं जिनमें समय–समय पर परिवर्तन होते रहे हैं। वर्तमान में यह निम्नलिखित सेवाओं में वर्गीकृत है –

- अखिल भारतीय सेवाएं
- केन्द्रीय सेवाएं, वर्ग I (समूह–ए)

- केन्द्रीय सेवाएं, वर्ग II (समूह–बी)
- केन्द्रीय सेवाएं, वर्ग III (समूह–सी)
- केन्द्रीय सेवाएं, वर्ग IV (समूह–डी)
- केन्द्रीय सचिवालय सेवाएं, वर्ग I,II,III और IV (समूह–ए, बी, सी, डी)
- विशेषज्ञ सेवाएं
- राज्य सेवाएं, वर्ग I,II,III और IV

भारत में लोक सेवाओं को राजपत्रित और अराजपत्रित वर्ग में भी वर्गीकृत किया गया है। आम तौर पर वर्ग III (समूह–सी) और वर्ग IV (समूह–डी) सेवाएं राजपत्रित वर्ग की नहीं है। राजपत्रित वर्ग के सदस्यों के नाम नियुक्ति, स्थानान्तरण, पदोन्नति और सेवानिवृत्ति के लिए सरकारी राजपत्र में प्रकाशित किये जाते है जबकि अराजपत्रितों के नहीं। इसके अतिरिक्त राजपत्रित वर्ग के सदस्यों को कुछ ऐसे विशेषाधिकार प्राप्त हैं जो अराजपत्रित वर्ग के सदस्यों को नहीं है। राजपत्रित वर्ग के सदस्यों को अधिकारी कहा जाता है, जबकि अराजपत्रित वर्ग के सदस्यों को कर्मचारी।

हमारे देश में बहस और चर्चा का एक महत्वपूर्ण मुद्दा यह रहा है कि क्या वर्गीकरण को जारी रखना चाहिए या इसके स्थान पर पद वर्गीकरण की प्रणाली लागू की जानी चाहिए। आई. ए. एस. जैसी सामान्य सेवाओं के सदस्य वर्गीकरण प्रणाली को अपनाने के विरूद्ध हैं जबकि आई. एफ. एस. (भारतीय वन सेवा) और आई. ए. एस. (भारतीय आर्थिक सेवा) जैसी विशेषज्ञ सेवाओं के सदस्य पद वर्गीकरण प्रणाली के पक्ष में है ओर पदक्रम प्रणाली हटाना चाहते हैं। भारत के प्रशासनिक सुधार आयोग (1966–70) ने पद वर्गीकरण प्रणाली अपनाने की सिफारिश की थी।

2.5 लोक सेवाओं का श्रेणीकरण

डॉ. एमपी. शर्मा के अनुसार वर्गीकरण में तीन प्रमुख वर्ग होते हैं–सेवा, श्रेणी तथा स्तर (श्रेणीकरण)। इनमें सबसे ऊपर सेवा है, वह सबसे बड़ा वर्ग है। श्रेणी सेवा का उपवर्ग है तथा स्तर, श्रेणी का उपवर्ग है। भारत में भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय लेखा परीक्षण एवं लेखा सेवा, सचिवालय सेवा आदि सेवा वर्ग के उदाहरण हैं। इन वर्गो के भीतर विभिन्न श्रेणियां होती हैं, जैसे–वरिष्ठ तथा कनिष्ठ तथा एक श्रेणी के भीतर अनेक स्तर हो सकते हैं और प्रत्येक स्तर (श्रेणीकरण) के पदों का वेतनक्रम आदि भिन्न–भिन्न होता है।

बोध प्रश्न– 1

1. वर्गीकरण की प्रणालियों को संक्षेप में समझाइये।
2. भारत में लोक सेवाओं के वर्गीकरण की स्थिति का विवेचन कीजिए।
3. लोक सेवाओं के श्रेणीकरण का आशय स्पष्ट कीजिए।

2.6 सामान्यज्ञ तथा विशेषज्ञ से आशय

लोक प्रशासन में सामान्यज्ञों और विशेषज्ञों दोनों को ही एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करना होता है। वस्तुत: उनमें कोई पारस्परिक अन्तर्विरोध नहीं है, अपितु वे एक–दूसरे

के अनुपूरक हैं। पिछले एक दशक से सामान्यज्ञों और विशेषज्ञों के बीच जो विवाद सुनाई पड़ रहा है, वह हमें वस्तुतः ब्रिटिश शासन पद्धति से विरासत में मिला है और हम उसमें कोई मौलिक परिवर्तन किए बिना उसके साथ पूरी तरह से चिपटे हुए हैं। ब्रिटेन को छोड़कर संसार के किसी भी देश में सामान्यज्ञ प्रशासक नाम का कोई वर्ग नहीं है। यहां तक कि ब्रिटेन में भी फुल्टन काल के पश्चात् प्रशासन पद्धति में काफी प्रगतिशीलता आयी है।

लोक प्रशासन की भाषा में सामान्यज्ञ से अभिप्राय है कि प्रशासनिक कार्य का पेशेवर प्रशिक्षण और पूर्व तकनीकी ज्ञान ग्रहण किय बिना ही, सामान्य जानकारी और मात्र प्रशासनिक क्षमता के आधार पर सम्पादन करना। उदार शिक्षा प्राप्त अधिकारियों का एक विशिष्ट वर्ग ही समूचे शासन में प्रशासनिक पदों को ग्रहण करता है। ऐसे सामान्यज्ञ प्रशासक कभी वित्त विभाग के उच्च पदों पर नियुक्त किये जाते हैं तो कभी सिंचाई, बिजली, यातायात, शिक्षा आदि अन्य विभागों की देखभाल करते हैं। यदि आज वे जिला कलेक्टर के रूप में कार्य करते हैं तो कल उन्हें शिक्षा संचालक अथवा सहकारी विभाग के सचिव के रूप में नियुक्त किया जा सकता है। ऐसे सामान्यज्ञ प्रशासक किसी विशिष्ट विषय विशेषज्ञ नहीं होते और यह मान्यता प्रचलित है कि उनका कार्य प्रशासन करना है, क्योंकि वे प्रशासनिक कला में प्रशिक्षित होते हैं। वे जहां कहीं भी कार्य करेंगे वहीं प्रशासनिक योग्यता और कुशलता का परिचय देंगे। हमारे देश में प्रशासन में भारतीय सिविल सेवा तथा भारतीय प्रशासनिक सेवा वर्ग के अधिकारियों के संबंध में यही धारणा प्रचलित है।

दूसरी तरफ इस मान्यता का भी विकास हुआ है कि प्रशासन में विशेषज्ञों की दक्षता और ज्ञान गुरुता का समुचित सदुपयोग किया जाना चाहिए और आधुनिक प्रशासक अपने क्षेत्र में ख्याति प्राप्त विशेषज्ञ ही होने चाहिए, विशेषज्ञ प्रशासक वह होता है जिसने किसी खास प्रशासकीय क्रियाकलाप में कार्यमूलक दक्षता हासिल की हो, पूर्व शिक्षा और उस विषय के सम्बन्ध में प्रवेश पूर्व प्रशिक्षण ग्रहण किया हो तथा अपने आपको उस क्षेत्र में समर्पित कर दिया हो। जिस व्यक्ति ने जीवन वृत्ति के रूप में डॉक्टर का पेशा स्वीकार किया हो वह चिकित्सा एवं स्वास्थ्य विभाग में विशेषज्ञ कहलाता है और वित्त सम्बन्धी कार्यो में विशिष्टता अर्जित की हो वह वित्त विभाग में ही विशेषज्ञ कहलाता है।

संक्षेप में, सामान्यज्ञ (सामान्यवादी) से तात्पर्य ऐसे लोक सेवक से है जिसका कोई विशेष आधार या पृष्ठभूमि नहीं होती और जो सरलता से शासन के एक विभाग या शाखा से दूसरे में हस्तान्तरित किया जा सकता है। सामान्यज्ञ प्रशासक की एक दूसरी परिभाषा यह भी की जाती है कि वह एक ऐसा लोक सेवक है जो प्रबन्धकीय वर्ग का एक सदस्य है तथा नियमों, उप–नियमों एवं पद्धति सम्बन्धी व्यवस्था में पूर्ण पारंगत होता है और वह सामान्यतः पोस्डकोर्ब यानि नियोजन, संगठन, परिवीक्षण, निर्देशन, समन्वय, प्रतिवेदन एवं बजट सम्बन्धी कार्यो का सम्पादन करता है। इसके विपरित, विशेषज्ञ से तात्पर्य उस व्यक्ति से है जिसे किसी क्षेत्र अथवा कार्य विशेष यथा–कृषि चिकित्सा, यान्त्रिकी, शिक्षा आदि में विशेष योग्यता प्राप्त है। विशेषज्ञ को उसकी शिक्षा एवं प्रशिक्षण के आधार पर सरलतापूर्वक पृथक किया जा सकता है।

यह प्रश्न है कि हमारे प्रशासन में महत्वपूर्ण का निर्वाह सामान्य ज्ञान, सामान्य शिक्षा और सामान्य अनुभव प्राप्त प्रशासकों (सामान्यज्ञों Generalists) को करना है अथवा विशिष्ट

ज्ञान, विशिष्ट शिक्षा और कार्यमूलक अनुभव प्राप्त पेशेवर विशेषज्ञों को लोकतंत्र में मंत्रियों और राजनीतिज्ञों को परामर्श (अनुभव) वाले प्रशासकों से मिलना चाहिए अथवा ' ज्ञान पटु' कुशल कारीगरों से? वस्तुत: यह प्रश्न एकदम नया नहीं है। तृतीय वेतन आयोग के समक्ष विशेषज्ञों के अनेक संघों एवं प्रतिनिधियों ने सामान्यज्ञ प्रशासकों के समतुल्य वेतन, भत्तों एवं सुविधाओं की समुचित मांग प्रस्तुत करके इसे उठाया था। इससे पूर्व भी विशेषज्ञों ने विभिन्न राज्य सरकारों से समुचित सुविधाओं तथा वेतन की मांग की थी। वर्तमान में डॉक्टरों, इंजीनियरों, वैज्ञानिकों आदि ने इस बात की प्रबल मांग प्रस्तुत की है कि उनका वेतनक्रम आई.ए.एस. श्रेणी के समतुल्य रखा जाए ताकि उनके सामाजिक दर्जे में वृद्धि हो और वे भी ऊंचे मनोबल से समाज की सेवा कर सकें। उत्तर प्रदेश के बिजली इंजीनियरों ने तो स्पष्ट कहा है कि उनके विभागों में सचिव किसी सामान्यज्ञ आई. ए. एस. के बजाय बिजली विभाग के वरिष्ठतम इंजीनियर को होना चाहिए। अब न केवल डॉक्टर और इंजीनियर अपितु प्राध्यापक, लेखा परीक्षक, सांख्यिकी, कृषि सेवा अधिकारी भी यह मांग करने लगे हैं कि शिक्षा, लेखा परीक्षण, कृषि आदि तकनीकी विषय हैं, अत: इन क्षेत्रों में निर्णय प्रक्रिया के समूचे स्तरों पर भी अखिल भारतीय सेवा के अधिकारियों के स्थान पर उन्हीं के व्यवसाय में पारंगत और विशिष्ट ज्ञान रखने वाले योग्यतम व्यक्तियों को बिठाया जाना चाहिए।

2.6.1 ऐतिहासिक परिदृश्य

सामान्यज्ञ और विशेषज्ञ, इन दो श्रेणियों के द्विभाजन की उत्पत्ति ब्रिटिश नार्थ कोटे ट्रेवेलियन समिति की रिपोर्ट 1654 में मिलती है। इस समिति ने ब्रिटिश प्रशासनिक वर्ग (सार्विक) के सदस्यों के लिए उब पदों तथा तकनीकी सेवाओं के लिए अधीनस्थ पदों की सिफारिश की थी। इस समिति का प्रभाव भारतीय सिविल सेवा से सम्बद्ध मैकाले समिति की रिपोर्ट 1854 पर भी पड़ा था जिसने भारत में भी वही पद स्थिति रखने की सिफारिश की थी।

इस प्रकार ब्रिटिश औपनिवेशिक शासनकाल के दौरान भारत में प्रशासनिक तंत्र को इस प्रकार ढाला गया था कि सार्विक सेवाओं, विशेषत: आई. सी. एस. के सदस्यों को सर्वोच्च पद प्राप्त हो। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भी इस प्रशासनिक रूप में कोई महत्वपूर्ण बदलाव नहीं आया है।

ब्रिटेन में फुल्टन समिति की रिपोर्ट (1968) में बदली परिस्थितियों में इस मामले की जांच तथा उन सिफारिशों का उल्लेख है जिनके आधार पर समिति ने विशेषज्ञों को बेहतर दर्जा प्रदान करने और उनकी भूमिका में वृद्धि करने के साथ–साथ उच्च सिविल सेवा के व्यावसायीकरण की सिफारिश की थी। इसके बावजूद ब्रिटेन में सार्विक अब भी सर्वोच्च पद पर बने हुए हैं किन्तु विशेषज्ञों के दर्जे में थोडा सुधार जरूर आया है। इसी प्रकार भारत में भी द्वितीय वेतन आयोग (1957–59) संसदीय प्राक्कलन समिति और प्रशासनिक सुधार आयोग (1966–70) ने विशेषज्ञ श्रेणी के सदस्यों के दर्जे और स्थिति में सुधार लाने की सिफारिश की थी पर स्थिति बदली नहीं है तथा थोड़े बहुत बदलाव के साथ पुरानी प्रणाली ही स्थापित है।

2.6.2 सामान्यज्ञ तथा विशेषज्ञों में विवाद के कारण

वर्तमान में सामान्यज्ञ तथा विशेषज्ञों के मध्य विवाद के अनेक कारण हैं, जो निम्नलिखित हैं –

1. सामान्यज्ञों का वेतन और उनकी सेवा शर्ते (पदोन्नति सहित) विशेषज्ञों की तुलना में बेहतर है। विशेषज्ञों की यह सबसे बड़ी परिवेदना है।
2. केन्द्र और राज्य सरकार स्तर पर अधिकांश उब पद (नीति निर्धारण और विचारकर्ता के स्तर के पद) भारतीय प्रशासनिक सेवा के सदस्यों के लिए सुरक्षित हैं अर्थात् इन उच्च पदों पर विशेषज्ञों की तैनाती नहीं की जाती है।
3. सचिवालय स्तर से नीचे के पदों पर आम तौर पर विशेषज्ञ होते हैं किन्तु अधिकांश मामलों में सामान्यज्ञों को कार्यकारी विभागों के प्रमुख पद पर नियुक्त किया जाता है, जैसे–कृषि निदेशक, मुख्य वन संरक्षक, स्वास्थ्य निदेशक आदि।
4. क्षेत्रीय स्तर पर संभागीय आयुक्त, कमाण्ड एरिया विकास आयुक्त और अन्य प्रमुख पदों पर सामान्यज्ञों की तैनाती होती है।
5. जिला स्तर पर जिला प्रशासन प्रमुख जिलाधीश का पद ही सार्विक लोक सेवक के खाते में है। जिला प्रशासन के आधीन कई तकनीकी विभाग हैं जिनके प्रमुख विशेषज्ञ लोक सेवक होते हैं। जिला परिषद में मुख्य कार्यकारी अधिकारी का पद भी सामान्यज्ञ के हवाले है जो विशेषज्ञों के दल का नेतृत्व करता है।
6. सामान्यज्ञ श्रेणी के अधिकारी विशेषज्ञ श्रेणी के अधिकारियों की तुलना में अपने राजनीतिज्ञ प्रभुओं के सानिध्य में अधिक रहते हैं।
7. सामान्यज्ञों की अंत: सांगठनिक गतिशीलता विशेषज्ञों की तुलना में अधिक है। आई. ए. एस. अधिकारी एक विभाग से दूसरे विभाग में, विभाग से लोक उद्‌यम या स्थायी शासन में तैनात होता रहता है, किन्तु विशेषज्ञ की तैनाती केवल सम्बद्ध विभागों और प्रशासनिक क्षेत्र तक ही सीमित रहती है।
8. सामान्यज्ञ श्रेणी के अधिकारियों की पदोन्नति विशेषज्ञ श्रेणी के अधिकारियों की तुलना में अधिक और शीघ्र होती है।
9. विशेषज्ञों के विचारों और प्रस्तावों तथा उनकी सलाहों पर आई. ए. एस. अधिकारी ध्यान नहीं देते क्योंकि वे विशेषज्ञों को अपने अधीन मानते हैं।
10. विशेषज्ञों के कार्य निष्पादन का आकलन प्रबन्ध कुशल आई. ए. एस. अधिकारियों द्‌वारा किया जाता है।

सामान्यज्ञों और विशेषज्ञों के बीच विवाद के उपर्युक्त कारणों से विशेषज्ञों में असंतोष की भावना व्याप्त हुई है जिसके परिणामस्वरूप उनके मनोबल और कार्य–कुशलता पर विपरित प्रभाव पड़ा है।

2.6.3 विशेषज्ञों के पक्ष में तर्क

विशेषज्ञों तथा वैज्ञानिकों ने अनेक ठोस तर्कों द्‌वारा अपना अभिमत प्रस्तुत किया है –

1. विशेषज्ञों के अनुसार भारत जैसे विकासशील राष्ट्र की समस्याओं का समाधान वैज्ञानिक दृष्टिकोण से ही किया जा सकता है न कि प्रशासनिक उपायों से। सामान्यज्ञ प्रशासक तो शासन में प्रक्रिया और खानापूर्ति को ही महत्व देते हैं और वैज्ञानिक शैली से कार्य करने में अपनी असमर्थता प्रकट करते हैं जबकि नियोजित आर्थिक विकास, औद्योगीकरण, सहकारिता और उत्पादन वृद्धि के लिए प्रशासकों में कार्यमूलक श्रेष्ठता और वैज्ञानिक अभिरूचि होना अपरिहार्य है।
2. विशेषज्ञ और तकनीकी लोग सामान्यज्ञ अफसरों की तुलना में आर्थिक अर्हताएं रखते हैं, अधिक प्रशिक्षित होते हैं और अपने कार्यक्षेत्र में अधिक अनुभव रखते हैं। उदाहरणार्थ– डॉक्टरों, इंजीनियरों, वैज्ञानिकों और प्राध्यापकों में से अधिकांश प्रथम श्रेणी के स्नातकोत्तर उपाधि धारी होते हैं, शोध और प्रशिक्षण से परिमार्जित होते हैं। इसके विपरित अखिल भारतीय सेवा के अफसरों की मूलभूत योग्यता मात्र स्नातक उपाधि है और प्राय: द्वितीय श्रेणी के उपाधि धारी भी इस सेवा की ओर आकर्षित हो रहे हैं। फिर जिस कार्य का प्रशिक्षण उन्हें नहीं दिया जाता, उसी विभाग में वे प्रधान कार्यकारी अधिकारी बना दिये जाते हैं। वस्तुत: आज हमारे देश में नीति निर्माण और निर्णय प्रक्रिया में अविशेषज्ञों को महत्वपूर्ण दर्जा प्रदान किया गया है और शायद यही देश की असफलताओं का एक महत्वपूर्ण कारक है।
3. सामान्यज्ञ प्रशासक को शान्ति और व्यवस्था बनाये रखने की रूढ़िवादी कार्य शैली का प्रशिक्षण दिया जाता है जबकि हमारा राज्य मात्र पुलिस राज्य नहीं रह गया है। भारत एक लोक कल्याणकारी सकारात्मक राज्य है। विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा जनविकास के उत्थानकारी कार्य करना ही हमारी सरकार का प्रधान लक्ष्य है। विकासमूलक कार्यो को प्रशिक्षित तकनीकी विशेषज्ञ ही समुचित ढंग से करा सकते हैं। देश की प्रगति कृषि कार्यक्रम, कृषि के सुधार एवं विकास, पशुपालन, सिंचाई की व्यवस्था, दुग्ध व्यवसाय, लघु उद्योग, उर्वरक प्रदाय इत्यादि कार्यो को पूरा करने पर निर्भर है, जिसे विशेषज्ञ ही ठीक तरह से कर सकते हैं। आज सिंचाई, बिजली, पेट्रोलियम, वाणिज्य एवं उद्योग, सार्वजनिक उद्यमों जैसे महत्वपूर्ण विभागों का संचालन सामान्यज्ञों द्वारा ही किया जा रहा है, जिससे इन विभागों में दूत गति से नये कीर्तिमान स्थापित नहीं किये जा सके।
4. सामान्य प्रशासक अपनी श्रेष्ठता का दावा करते हैं और विशेषज्ञों के प्रति तुच्छ भावना रखते हैं। ये अधिकारी आदेश देना जानते हैं किन्तु तकनीकी उलझनों और अड़चनों को समझने का प्रयास नहीं करते।
5. सामान्यज्ञों की नौकरशाही औपचारिकता एवं लालफीताशाही को अनावश्यक महत्व देती है। ये नौकरशाह नियमों और विनियमों का पालन कठोरता के साथ करते हैं। इस प्रकार सामान्यज्ञ अफसरों के कार्य करने के तरीके अनमनीय, यान्त्रिकी, हृदयहीन एवं औपचारिक हो जाते हैं।

6. अखिल भारतीय सेवा के सामान्य प्रशासकों में एक झूठा अहम आज भी समाया हुआ है कि ये जनता के स्वामी हैं न कि सेवक। स्वाधीनता के 60 वर्षो के बाद भी नौकरशाही देश की जनता से अपना तादात्म्य स्थापित नहीं कर सकी।
7. आर्थिक नियोजन, सांख्यिकी, रोजगार, औद्योगिक निगम, सहकारिता, कृषि, स्थानीय स्वशासन, सुरक्षा, चिकित्सा, शिक्षा, विधि, यान्त्रिकी जैसे तकनीकी विभाग की बागड़ोर सामान्यज्ञों के हाथों में कदापि नहीं होनी चाहिए। इन विभागों में शोध एवं अनुसंधान की काफी गुंजाइश रहती है, जिसे विशेषज्ञ ही पूरा कर लुकते हैं। यह कैसी विडम्बना है कि मामूली से क्लर्क के लिए भी टाईपिंग, स्टैनो एवं लेखांक की जानकारी आवश्यक मानी जाती है जबकि विभागीय सचिव जैसे प्रधान पद के लिए विभाग से संबंधित ज्ञान की कोई अपेक्षा ही नहीं की जाती।

राष्ट्र निर्माण में विशेषज्ञ के महत्व को स्वीकार करते हुए सन् 1956 में डॉ, राजेन्द्र प्रसाद ने कहा था कि "विशेषज्ञों को सामान्यज्ञ प्रशासकों के समतुल्य वेतन– भत्ते एवं दर्जा मिलना चाहिए।" सन् 1960 में जवाहरलाल नेहरू ने स्पष्ट किया कि " यह धारणा गलत है कि प्रशासनिक सेवा क्षय सेवाओं से उच्च है। एक यान्त्रिक प्रशासक के रूप में कार्य कर सकता है, परन्तु एक प्रशासनिक यान्त्रिक के बिना कार्य नहीं कर सकता। "वर्ष 1967 में प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी ने भी कहा कि "यह कितना विचित्र है कि हमारे डॉक्टरों और इंजीनियरों को सचिवों के समतुल्य वेतन और दर्जा नहीं मिला है जबकि अपने पेशे में वे पारंगत होते हैं। हमारे मेधावी नौजवान यान्त्रिक और डॉक्टरी के व्यवसाय में जाते हैं और आर्थिक विकास व मानवीय कल्याण में उनका उत्कृष्ट योगदान होता है फिर भी उन्हें सामान्यज्ञों के सहायक के रूप में ही कार्य करना होता है। "श्री यशवन्त राव चव्हाण ने कहा कि "जनता की निगाह में सामान्यज्ञ प्रशासक सर्व शक्तिमान बन गये और बाकी सभी की स्थिति गौण हो गयी।" प्रशासन की यह भूमिका तो ब्रिटिश विरासत है जिसे तुरन्त बदलना होगा और विशेषज्ञों एवं रचनात्मक कार्य करने वाले राष्ट्र निर्माताओं को यथोचित सामाजिक दर्जा उपलब्ध कराना होगा। प्रशासनिक सुधार आयोग के अध्यक्ष के. हनुमन्तैया ने भी इस बात को अस्वीकार कर दिया कि प्रबन्ध के उब पदों को आई. ए. एस. वर्ग 'के अधिकारियों हेतु ही सुरक्षित रखा जाए। उनके अनुसार "सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन के इस युग में नीति–निर्माण 'और प्रशासन के उब पदों स्तरों पद विशिष्टता से विभूषित विशेषज्ञों के परामर्श को सबसे ज्यादा महत्व दिया जाना चाहिए।" साथ ही प्रशासन में व्याप्त समान कार्य के लिए असमान वेतन की असंगति को दूर करना अपरिहार्य है ताकि लोकसेवा में पाई जाने ईर्ष्या और तुच्छ मनोवृत्ति को दूर किया जा सके।

संक्षेप में विशेषज्ञों के अनुसार, "विकासात्मक प्रशासन में लक्ष्य प्राप्ति के मार्ग में सामान्यज्ञ बाधक हैं।"

2.6.4 प्रशासन में सामान्यज्ञों की भूमिका के समर्थन में तर्क

आधुनिक लोक प्रशासन की प्रमुख आवश्यकताओं में से एक सामान्यज्ञ प्रशासक अर्थात् समायोजक की है जो व्यक्तिगत कार्यकारियों के माध्यम से किसी सार्थक तत्व का सृजन करते हैं।

सामान्यज्ञ प्रशासकों के समर्थकों ने भी वर्तमान प्रशासनिक ढांचे को यथावत बनाये रखने के लिए अनेक तर्क प्रस्तुत किये हैं, जो इस प्रकार हैं –

1. अन्य कलाओं की भांति प्रशासन भी एक कला है और सामान्यज्ञों को प्रशासकीय कला में ही प्रशिक्षित किया जाता है। वे किसी भी विभाग में किसी भी पद को धारण करते हुए प्रशासनिक कुशलता का परिचय देते हैं।
2. किसी भी शासकीय विभाग में अनेक तरह के विशेषज्ञ कार्य करते हैं और उनके कार्यो में सामंजस्य उत्पन्न करके विवेकसम्मत निर्णय लेने का कार्य अत्यन्त जिम्मेदारी का होता है। इसे विशेषज्ञों के बजाय प्रशासक ही उत्तम ढंग से कर सकता है क्योंकि वह शासन में सर्वत्र निर्णय लेने के कार्य करता है, अत: इस प्रकार के उत्तरदायित्व के निर्वाह का अभ्यस्त हो जाता है।
3. प्रशासक सामान्य अनुभव, उदार दृष्टिकोण और बिना किसी लगाव के निर्णय लेने का आदी होता है, जबकि विशेषज्ञ का झुकाव अपने व्यवसाय की ही तरफ अधिक होता है। फलत: उसके निर्णय स्वतन्त्र दृष्टि से होने के बजाय लगावपूर्ण अधिक होंगे।
4. सामान्यज्ञ प्रशासक सूझबूझ और दूरदृष्टि से कार्य करने के आदी होते हैं। वे विषम वस्तु से सम्बन्धित सूचनाएँ और आकड़े इकट्ठे करते हैं और नीति–निर्माण में उनका बुद्धिसंगत उपयोग करते हैं जबकि विशेषज्ञ प्रशासक तो केवल उसी मार्ग पर चलना पसन्द करते हैं जिसका उन्हें ज्ञान होता है। इसका परिणाम होगा कि एकांगी दृष्टिकोण वाली गलत नीतियां राष्ट्रहित के प्रतिकूल होगी।

रॉबर्ट डूबिन ने तो यहां तक कहा है कि "नीति संबंधी निर्णय लेने में विशेषज्ञ तो एकदम अनुपयुक्त होते हैं।" थोर्सटीन वेबलीन के अनुसार, "विशेषज्ञों से अभिप्राय प्रशिक्षित अयोग्यता से ही होता है।" हैराल्ड लॉस्की के अनुसार, "प्रशासनिक निर्णय लेने में विशेषज्ञों की सीमाएं है। अपने कार्यमूलक ज्ञान को ग्रहण करते समय विशेषज्ञ सामान्य ज्ञान की बलि चढ़ा देते हैं। "जेम्स मेकेमी के अनुसार, "विशेषज्ञ प्रशासक दूसरों के दृष्टिकोणों की उपेक्षा कर देते हैं जबकि प्रशासन में सही निर्णय तो सभी के दृष्टिकोणों में सामंजस्य स्थापित करके ही लिया जा सकता है।"

वर्षो से भारतीय प्रशासनिक सेवा का सामान्यज्ञ स्वरूप रहा है। स्वाधीनता के प्रारम्भिक वर्षा में अनेक प्रशासनिक चुनौतियों और समस्याओं का कुशलतापूर्वक समाधान इस सेवा के अधिकारियों ने किया है। सरदार बल्लभ भाई पटेल ने संविधान सभा में सामान्यज्ञ प्रशासकों के योगदान की चर्चा करते हुए आधुनिक भारत के निर्माण में उनके अस्तित्व और सेवाओं की भूरि–भूरि प्रशंसा की थी। विगत वर्षो में प्रशासकों ने जहां देश को स्थिरता प्रदान की वहीं

आर्थिक नियोजन की प्रक्रिया को गांव–गांव तक पहुंचाने का अनूठा कार्य किया। ऐसी स्थिति में प्रशासनिक ढांचे में आमूल–चूल परिवर्तन करना कितना उपयुक्त होगा?'

2.7 सामान्यज्ञों और विशेषज्ञों की समस्या के निराकरण के उपकरण

सामान्यज्ञों और विशेषज्ञों के संगठन के चार रूप हैं। उनके मध्य के सम्बन्ध की प्रकृति उनके द्वारा अपनाए गए रूप के प्रकार पर आधारित है। इनका विवरण नीचे दिया जा रहा है –

1. **पृथक पदानुक्रम –** इस प्रणाली में सार्विक और विशेषज्ञों दोनों तरह के अधिकारियों का वेतन समान होगा किन्तु विशेषज्ञों को अधिक सम्मान मिलेगा। यह रूप जर्मनी, स्वीडन और आस्ट्रेलिया में प्रचलित है।
2. **समान्तर पदानुक्रम –** इस प्रणाली में सार्विक और विशेषज्ञ दोनों तरह के अधिकारी साथ–साथ काम करेंगे। दूसरे शब्दों में, दोनों के अपने–अपने पदानुक्रम (एक–दूसरे के समानान्तर) होंगे। दोनों के बीच निरन्तर सम्पर्क से काम में तालमेल बना रहता है।
3. **संयुक्त पदानुक्रम –** इस प्रणाली में सार्विक नौकरशाह और विशेषज्ञ तकनीकीविद संयुक्त रूप से अपने वरिष्ठ अधिकारी स्थायी सचिव को रिपोर्ट करते हैं जो सार्विक श्रेणी का होता है। इसी प्रकार, विशेषज्ञ और सार्विक दोनों ही मंत्री को सलाह दे सकते हैं।

समेकित पदानुक्रम अथवा एकीकृत पदानुक्रम

इस प्रणाली के अन्तर्गत सभी सेवाओं और संवर्गों को एक में मिलाकर एक समेकित लोक सेवा (संवर्ग) होगी। इन सेवाओं में प्रवेश के लिए एक ही खुली प्रतियोगी परीक्षा होगी तथा वेतन और सेवा– शर्ते भी समान होगी। पाकिस्तान ने इस मॉडल को 1973 में अपनाया था। भारत में भी इस मॉडल पर विचार हो रहा है तथा इस आशय के सुझाव प्राप्त हो रहे हैं कि अखिल भारतीय सेवाओं और केन्द्रीय सेवाओं को एक में मिलाकर एकीकृत सिविल सेवा का गठन किया जाए।

2.7.1 प्रशासनिक सुधार आयोग की अनुशषाएँ (सिफारिश)

सामान्यज्ञ और विशेषज्ञ के मध्य विवाद के निपटान के लिए प्रशासनिक सुधार आयोग ने कार्मिक प्रशासन से संबंधित अपनी रिपोर्ट (1969) में निम्नलिखित सिफारिशें की थी –

1. भारतीय प्रशासनिक सेवा के लिए कार्यपरक क्षेत्र अलग किया जाना चाहिए। इस क्षेत्र में भू–राजस्व प्रशासन, मजिस्ट्रेट से जुड़े कार्य और राज्यों में विनियामक वे कार्य शामिल हो सकते हैं जो अन्य कार्यपरक सेवाओं के अधिकार क्षेत्र में नहीं आते हैं। आयोग का मानना था कि आई. सी. एस. को सार्विक सेवा नहीं माना जाना चाहिए।
2. उच्च सेवाओं को दो श्रेणियों में वर्गीकृत किया जाना चाहिए। कार्यक्षेत्र से जुड़े पद और मुख्यालय से जुड़े पद। किसी कार्यपरक क्षेत्र के सभी पदों पर, चाहे वे पद कार्यक्षेत्र से जुड़े हों या सचिवालय से, उस कार्यपरक सेवाओं के सदस्यों को ही कार्य संभालना चाहिए।
3. प्रबन्धन से जुड़े जिन वरिष्ठ पदों के लिए विषय ज्ञान आवश्यक है, उन पदों को सुसंगत और सम्बद्ध कार्यपरक संवर्गों के व्यक्तियों के द्वारा ही भरा जाना चाहिए।

4. लोक सेवा का व्यावसायीकरण होना चाहिए। इस प्रयोजन से भर्ती, प्रशिक्षण और कैरियर प्लानिंग के कार्यों में नवीनता लाई जानी चाहिए।
5. एक तर्कसंगत वेतन ढांचा अपनाया जाना चाहिए ताकि प्रत्येक कार्य की वास्तविक जिम्मेदारियां सामने आ जायें।
6. लोक उद्‌यमों में अल्पकालिक अथवा पूर्णकालिक अध्यक्ष या प्रबन्धक निदेशक या निदेशकों के पदों पर सार्विक वर्ग के सचिवों को नियुक्त करने की प्रथा बन्द होनी चाहिए।

बोध प्रश्न– 2

1. सामान्यज्ञ तथा विशेषज्ञ का आशय स्पष्ट कीजिए।
2. सामान्यज्ञ तथा विशेषज्ञ में विवाद के कारणों को समझाइये
3. एकीकृत पदानुक्रम को स्पष्ट कीजिए।

2.8 सारांश

इस प्रकार सामान्यज्ञ एवं विशेषज्ञों की समस्याएँ काफी गम्भीर हैं जिसके कारण लोक सेवा की कार्यकुशलता में कमी आयी है। हमारे देश का प्रशासन सामान्यज्ञों को महत्व देकर चलता है जिसे आज का बढ़ता हु आ तकनीशियन स्वीकार नहीं करता है, अत: इनके समाधान के लिए अनेक उपाय भी किये गये हैं लेकिन अभी तक ये कारगर सिद्ध नहीं हु ए हैं। लाक सेवाओं का वर्गीकरण एवं श्रेणीकरण करने से अनेक समस्याओं का समाधान होता है। इनसे सामान्यज्ञ एवं विशेषज्ञ की समस्याओं को भी कम किया जा सकता है। सामान्यज्ञ एवं विशेषज्ञों की समस्या का एक कारगर उपाय इन दोनों का 'एकीकरण' करना है। एकीकरण के फलस्वरूप दोनों का स्तर बराबर होने से विवाद की सम्भावना न्यूनतम रहेगी।

2.9 शब्दावली

- **वर्गीकरण –** तुलनात्मक रूप से पदों को छांटना एवं श्रेणीबद्ध करना।
- **पद वर्गीकरण –** पद संबंधी कर्मचारी के दायित्वों/कर्त्तव्यों के अनुसार वर्गीकरण।
- **श्रेणी वर्गीकरण –** कर्मचारी की व्यक्तिगत स्थिति अथवा दर्जा के अनुसार वर्गीकरण करना।
- **अखिल भारतीय सेवाएं –** ये वे सेवाएं हैं जो संविधान के अनुच्छेद 312 के अन्तर्गत केन्द्र एवं राज्यों के लिए समान रूप से कार्य करती हैं।
- **सामान्यज्ञ –** प्रशासनिक कार्य का, पेशेवर प्रशिक्षण और पूर्व तकनीकी ज्ञान ग्रहण किये बिना ही सामान्य जानकारी और मात्र प्रशासनिक क्षमता के आधार पर सम्पादन करना।
- **विशेषज्ञ –** जिसने किसी विशेष (खारा) शासकीय क्रियाकलाप में कार्यमूलक दक्षता हासिल की हो, पूर्व शिक्षा और उस विषय के सम्बन्ध में प्रवेश पूर्व प्रशिक्षण ग्रहण किया हो तथा अपने आपको उस क्षेत्र में समर्पित कर दिया हो।
- **एकीकृत पदानुक्रम –** इसमें सभी सेवाओं और संवर्गों को एक साथ मिलाकर एक समेकित लोक सेवा संवर्ग बनाया जाता है।

2.10 अभ्यास प्रश्न

1. सामान्यज्ञ एवं विशेषज्ञ विवाद से आप क्या समझते हैं?
2. सामान्यज्ञ एवं विशेषज्ञ के विवाद के कारणों की विवेचना कीजिए।
3. सामान्यज्ञ एवं विशेषज्ञ के संदर्भ में प्रशासनिक सुधार आयोग की अनुशंसाओं की विवेचना कीजिए।

2.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. भाम्भरी, सी. पी. : ब्यूरोक्रेसी एण्ड पोलिटिक्स इन इण्डिया, नई दिल्ली : विकास, 1971
2. द्वारकादास, आर. : रोल ऑफ हायर सिविल सरवेन्टस इन इण्डिया, बाम्बे : पापुलर बुक डिपो, 1960
3. मोतीलाल, ओ. पी. : (सम्पादित) चेंजिग आस्पेक्टस ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डिया, इलाहाबाद. युग पब्लिकेशन, 1976

इकाई–3

मानव संसाधन विकास : प्रोत्साहन, मनोबल, और अभिप्रेरण के सिद्धान्त एवं व्यवहार, आचरण के नियम तथा अनुशासनात्मक विनियम

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 मानव संसाधन विकास का तात्पर्य

3.3 प्रोत्साहन

3.3.1 वेतन

3.3.2 भत्ते

3.3.3 ऋण एवं कटौतियां

3.4 मनोबल

3.4.1 मनोबल को निर्धारित करने वाले घटक

3.4.2 मनोबल को विकसित करने के उपाय

3.4.3 अभिप्रेरण व मनोबल में अन्तर

3.4.4 मनोबल के परिणाम

3.5 अभिप्रेरण

3.5.1 अभिप्रेरण के उद्देश्य

3.5.2 अभिप्रेरण का महत्व

3.5.3 अभिप्रेरण का प्रकार

3.5.4 अभिप्रेरण की विधियां व तकनीकें

3.5.5 अभिप्रेरण को प्रभावित करने वाले घटक

3.5.6 अभिप्रेरण की विचारधाराएं

3.6 आचरण के नियम

3.6.1 आचार संहिता की आवश्यकता

3.6.2 भारत में सरकारी कर्मचारी– आचार संहिता

3.7 अनुशासनात्मक विनियम

3.7.1 अनुशासनात्मक कार्यवाही की आवश्यकता

3.7.2 अनुशासनात्मक कार्यवाही के कारण

3.7.3 अनुशासनात्मक कार्यवाही के प्रकार

3.7.4 भारत में अनुशासन के तरीके एवं प्रक्रिया

3.8 सारांश

3.9 शब्दावली
3.10 अभ्यास प्रश्न
3.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- मानव संसाधन विकास के आशय पर चर्चा कर सकेंगे,
- विभिन्न प्रकार के प्रोत्साहनों का वर्णन कर सकेंगे,
- मनोबल का आशय, मनोबल को निर्धारित करने के घटक
- मनोबल को विकसित करने के उपायों का वर्णन कर सकेंगे,
- अभिप्रेरणा का आशय, अभिप्रेरण के उदेश्य, अभिप्रेरणा का महत्व, तथा प्रकार एवं तकनीकों और घटकों पर चर्चा कर सकेंगे,
- अभिप्रेरण की विचारधाराओं की संक्षिप्त जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
- आचरण के नियम एवं अनुशासनात्मक विनियम के बाऐं में वर्णन कर सकेंगे

3.1 प्रस्तावना

कार्मिक प्रशासन में मानव संसाधन विकास एक अहम पहलू है। जिसके बिना प्रशासन का संचालन करना कठिन हो जाता है। विश्व के लगभग सभी देशों में कार्मिक प्रशासन में मानव संसाधन के विकास पर पर्याप्त जोर दिया जा रहा है। मानव संसाधन के विकास के अनेक तरीके हैं जिनमें प्रमुख हैं – कार्मिकों को दिये जाने वाले विभिन्न प्रकार के प्रोत्साहन, मनोबल विकसित करने के उपायों पर जोर देना, अभिप्रेरण विकसित करना इत्यादि।

मानव संसाधन विकास के साथ– साथ कार्मिकों को आचरण के नियमों एवं अनुशासनात्मक विनियमों का पालन करवाने पर जोर दिया जाता है। जब तक कि कार्मिकों में अनुशासन एवं आचरण कायम नहीं हो सकता तब तक कार्मिकों का विकास करना कठिन हो जाता है।

3.2 मानव संसाधन विकास का तात्पर्य

आम बोलचाल की भाषा में एच. आर. डी. (ह्यूमन रिसोर्स डवलपमैन्ट) के नाम से लोकप्रिय हो रही यह अवधारणा किसी संगठन में कार्यरत कार्मिकों के विकास तथा कल्याण को सर्वाधिक महत्व प्रदान करती है। मानव को संगठन का मूल्यवान तथा असीमित क्षमताओं से युक्त संसाधन मानकर उसके सर्वागीण विकास को प्राथमिकता प्रदान करने की यह अवधारणा कुछ दशक पूर्व ही स्वीकार की गई थी। मानव संसाधन के विकास की ओर सर्वप्रथम औद्योगिक संस्थानों में ध्यान दिया गया। पश्चिमी देशों में आरम्भ हुई औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात मनुष्य श्रमिक को कल कारखानों में मशीन की तरह उपयोग में लाने की प्रवृति सभी देशों में विद्यमान थी। कच्चे माल के वास्तविक उत्पादन के रूप में प्रस्तुत करने हेतु मशीन तथा मनुष्य दोनों महत्वपूर्ण संसाधन माने जाते थे। एफ, डब्ल्यू टेलर के वैज्ञानिक प्रबंध,

सिद्धान्त के माध्यम से जहां एक और मशीन, तकनीक, पयवेक्षण तथा कार्य प्रणाली को सुदृढ किया जाने लगा वहीं श्रमिकों को आर्थिक या मौद्रिक लाभ प्रदान करके अधिक उत्पादन के प्रयास किये जाने लगे किन्तु हार्वर्ड विश्वविद्यालय के समाजशास्त्री जार्ज एल्टन मेयो द्वारा सन 1927–32 में अमेरिका की वेस्टर्न इलैक्ट्रीकल्स कम्पनी में किये गये हाथोर्न प्रयोगों के पश्चात परम्परागत प्रबंध मान्यताएं दम तोड़ने लगी। प्रयोगों के पश्चात यह सिद्ध हो गया कि किसी भी संगठन में कार्यरत कर्मचारियों की कार्य क्षमता तथा संतुष्टि वहां के वातावरण, पर्यवेक्षण, नेतृत्व सहित सामाजिक–मानसिक कारणों पर भी अत्यधिक निर्भर करती है। स्पष्ट है कि मनुष्य को मशीन की तरह उपयोग में लाने की अपेक्षा उसकी भावनाओं, व्यवहार, रूचि, समूह स्थिति इत्यादि को समझना आवश्यक है।

मानव संसाधन विकास की नवीन अवधारणा कार्मिकों के विकास को सर्वांगीण दृष्टिकोणों से समझने का प्रयास करती है। इस अवधारणा में यह मानकर चला जाता है कि कार्मिकों की संतुष्टि तथा उत्पादन बढ़ाने से पूर्व सम्बन्धित संगठन में ऐसा वातावरण होना चाहिए जिसमें कार्मिकों की क्षमताएं स्वत: ही बढ़ती रहें। इसके लिए आवश्यक है कि कर्मचारियों की भर्ती, प्रशिक्षण, पदोन्नति सहित अन्य विविध पक्षों पर गम्भीरता पूर्वक ध्यान दिया जाए। इस अवधारणा को किसी भी संगठन में क्रियान्वित करने से पूर्व एक सुस्पष्ट तथा सुसंगठित मानव संसाधन विभाग या इकाई की स्थापना की जाती है जो कि कार्मिक विकास से संबंधित सभी कार्य कुशलता पूर्वक संपादित कर सके।

"इस प्रकार मानव संसाधन विकास वह प्रक्रिया है जिसमें किसी संगठन के कर्मचारियों की एक नियोजित ढंग से इस प्रकार सहायता की जाती है कि वे नवीन कार्य आवश्यकताओं एवं उच्चतर दायित्वों के प्रति कौशल प्राप्ति तथा एक स्वस्थ संगठनात्मक संस्कृति को विकसित करने में रूचि ले सकें जिससे कि संगठन के लक्ष्य तथा कार्मिकों की संतुष्टि के स्तर उंचा हो जाए।" सामान्यत: मानव संसाधन विकास प्रक्रिया के निम्न लक्ष्य होते हैं–

(i) प्रत्येक कार्मिक की व्यक्तिगत क्षमताओं को विकसित करना

(ii) कार्मिक के वर्तमान पद दायित्वों के अनुरूप उसकी क्षमताओं को विकसित करना

(iii) कार्मिक से भविष्य में अपेक्षित दायित्वों के अनुरूप उसकी क्षमताओं को विकसित करना

(iv) प्रत्येक कार्मिक तथा उसके पर्यवेक्षक के मध्य मधुर संबंध स्थापित करना

(v) संगठन की प्रत्येक इकाई के मध्य आपसी सामंजस्य स्थापित करना

(vi) संगठन के सम्पूर्ण स्वास्थ्य को उच्च स्तरीय बनाना जिससे कि व्यक्तिगत तथा सामूहिक क्षमताओं में अभिवृद्धि हो लक्ष्य प्राप्ति में सहायता मिल सके।

नोट. मानव संसाधन विकास के प्रयास एवं प्रक्रियाओं सम्बन्धी चार्ट–

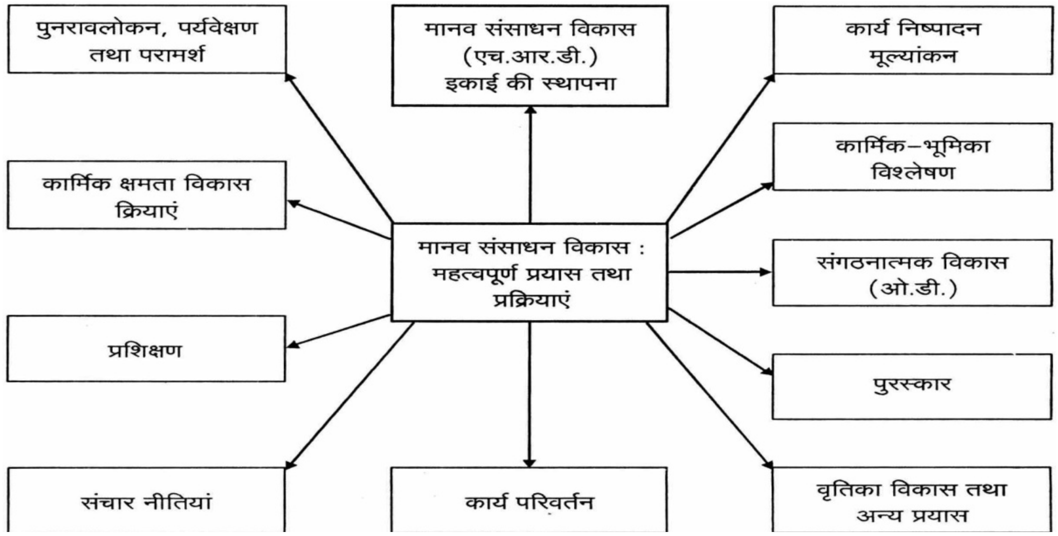

मानव संसाधन विकास प्रक्रिया में किसी भी कार्यालय, कारखाने या संगठन को इस प्रकार परिवर्तित किया जाता है कि वह कार्मिक विकास हेतु एक उपयुक्त वातावरण बना सके, इसे संगठनात्मक विकास (आर्गनाइजेशनल डवलपमैण्ट) कहा जाता है। कार्मिकों को पर्याप्त परामर्श तथा अवलोकन के माध्यम से सहायता प्रदान की जाती है साथ ही प्रत्येक कार्मिक की क्षमताओं का आकलन (पोटैन्शियल एप्रेजल) तथा उसके द्वारा संपादित कार्य का वास्तविक मूल्यांकन (परफोरमैन्स एप्रेजल) भी किया जाता है। इसी प्रकार कार्मिकों को प्रशिक्षण, प्रोत्साहन, पुरस्कार प्रदान करने के अतिरिक्त आवश्यकतानुसार कार्य स्थल या प्रकृति भी परिवर्तित की जाती है। संगठन की प्रत्येक इकाई के बीच समन्वय बनाने के लिए संचार की व्यावहारिक नीतियां भी कार्यान्वित की जाती हैं। अनुसंधान तथा नवाचारों को भी पर्याप्त स्थान दिया जाता है। औद्योगिक सम्बन्धों को मधुरता प्रदान करने के लिए ओकटापैक ओपननेस, कन्फ्रन्टेशन ट्रस्ट, आथोन्टिसिटी, प्रोएक्शन, औटोनेमी, कोलोबोरेशन को प्रमुखता से लागू किया जाता है।

जहां तक भारत में मानव संसाधन विकास का सवाल है, अभी तक इस संदर्भ में अधुनातन नीतियां एवं कार्यक्रम निर्मित नहीं हुए है तथापि यह अवश्य कहा जा सकता है कि भारतीय कार्मिक प्रशासन तीव्रता से मानव संसाधन विकास की अवधारणा को महत्व देने को उत्सुक दिखाई पड़ता है।

3.3 प्रोत्साहन

कार्मिकों को अनेक प्रकार कं प्रोत्साहन दिये जाते हैं। जिनमें सबसे प्रमुख वेतन है। वेतन प्रति माह दिये जाने वाली एक निश्चित राशि होती है, जो अनेक मापदण्डों के आधार पर निर्धारित की जाती है। वेतन के अतिरिक्त अन्य प्रोत्साहनों में निम्नलिखित है – महंगाई भला, स्थानीय या क्षेत्रीय भले, बच्चों की शिक्षा के लिए भत्ता, चिकित्सा सहायता, प्रवास भत्ता, छुट्टियों की सुविधाएं तथा अन्य सुविधाएं दी जाती हैं।

3.3.1 वेतन

लोक सेवकों को पर्याप्त, आकर्षक तथा सम्मानजनक वेतन देकर ही सेवाओं में कार्य कुशलता स्थापित की जा सकती है। इस सम्बन्ध में लार्ड इस्लिंगटन का मत था – "सरकार अपने कर्मचारियों को इतना और केवल इतना वेतन दे जितना कि उचित प्रकृति एवं चरित्र वाले व्यक्तियों की भर्ती के लिए आवश्यक हो और जिसके द्वारा वे संतुष्टि तथा प्रतिष्ठा की ऐसी मात्रा कायम रख सके जो उनको प्रलोभनों से बचाये तथा उन्हें सेवा काल तक कुशल बनाए रखे।"

वेतन को अंग्रेजी में 'सेलेरी' कहा जाता है जो मूलत: लेटिन शब्द 'सेलेरियम' से बना है। सेलेरियम का मूल अर्थ है – नमक – धन या नमक खरीदने के लिए धन देना। भारत में सेलैरी को 'तनख्वाह' भी कहते हैं।

लोक सेवकों को देय वेतन के कतिपय सामान्य सिद्धान्त इस प्रकार हैं –

1. यह कर्मचारियों की सामान्य आवश्यकताओं को पूरी करता है।
2. वेतन का दूसरा सिद्धान्त "समान कार्य के लिए समान वेतन" का है, जिसको भारत के संविधान में नीति निर्देशक तत्वों में सम्मिलित किया गया है।
3. सरकार को एक आदर्श नियोक्ता होना चाहिए अर्थात लोक सेवकों को पर्याप्त सुविधाएं तथा श्रेष्ठ सेवा दशाएं सरकार द्वारा उपलब्ध करवायी जानी चाहिए।
4. वेतन निर्धारण के क्रम में राष्ट्रीय आर्थिक स्थिति को भी ध्यान में रखना चाहिए अर्थात प्रति व्यक्ति औसत आय के समानुपात में ही लोक सेवकों को वेतन दिया जाना ठीक रहता है।
5. पांचवा सिद्धान्त यह मानता है कि मूल्य दरों में परिवर्तन के साथ ही वेतन भी परिवर्तन होना चाहिए अर्थात् महंगाई बढ़े तो वेतन भी बढ़ना चाहिए और यदि महंगाई कम हो तो वेतन भी कम होना चाहिए। परन्तु यह सिद्धान्त उस परिस्थिति में अव्यावहारिक हो जाता है जब महंगाई की दर बार– बार घटनी–बढ़नी शुरू हो जाए।
6. वेतन संरचना के निर्धारण में यह भी ध्यान रखना चाहिए कि वह राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था, भौगोलिक परिस्थितियों तथा समयानुकूल हो।
7. वेतन निर्धारण का सातवां सिद्धान्त यह मानता है कि यह नियोक्ता की क्षमताओं के आधार पर होना चाहिए। यानि नियोक्ता के पास संसाधनों की कमी हो तो अधिक वेतन संभव नहीं है। इसी सिद्धान्त के अनुसरण में सरकार अपने कार्मिकों का वेतन निर्धारित करती है, क्योंकि सरकारी धन का वितरण केवल कार्मिकों के वेतन के लिए ही नहीं बल्कि देश के समग्र विकास के लिए भी होना चाहिए।
8. लोक सेवाओं में कार्यरत कार्मिकों को दिया जाने वाला वेतनमान उच्च तथा निम्न स्तरीय कार्मिकों में मध्य बहुत अधिक भेदभाव पूर्ण नहीं होना चाहिए।
9. वेतन इतना आकर्षक तथा पर्याप्त होना चाहिए कि योग्य एवं मेधावी व्यक्ति लोक सेवाओं में बने रह सकें तथा लोक सेवाओं को 'वृतिका' की तरह अपना सकें। इस तरह वेतन

निर्धारण में कतिपय सिद्धान्तों का पालन करना अपेक्षित है। वस्तुत: यह देश, काल तथा परिस्थतियों पर निर्भर करता है।

3.3.2 भत्ते

भारत में लोक सेवकों को उनके कार्य, पद तथा सेवा शर्तों के अनुरूप भत्ते भी दिये गये हैं जो वेतनमान से ही सम्बद्ध रहते हैं। कुछ भत्ते सभी कर्मचारियों के लिए तथा कुछ विशिष्ट भत्ते, विशिष्ट पदों को मिलते हैं। भत्तों में केन्द्र तथा राज्य सेवाओं के अनुसार भी अन्तर रहता है।

लोक सेवकों को देय प्रमुख भत्ते निम्न हैं–

1. **मंहगाई भत्ता –** कीमतों में वृद्धि तथा राष्ट्रीय थोक सूचकांकों के अनुरूप मंहगाई भत्ता भी बढ़ाया जाता है। भारत में प्राय: जनवरी तथा जुलाई में महंगाई भत्ते की दरें संशोधित की जाती है। निम्न पदों पर यह भला अधिक होता है तथा उच्च स्तरीय पदों पर इसका प्रतिशत कम होता है। यह मूल वेतन से निर्धारित किया जाता है। सामान्यत: उच्च पदों के लिए महंगाई भत्ते की राशि न्यूनतम एवं अधिकतम निर्धारित की जाती है।
2. **मकान किराया भत्ता –** लोक सेवकों को यह भला उनके कार्य स्थल; (महानगर–ए, शहर, कस्बा, गांव) के आधार पर उनके वेतनमान के अनुसार दिया जाता है। यदि कर्मचारी सरकारी आवास में रहता है तो यह भत्ता देय नहीं होता है। मकान किराया भत्ता की दर शहरों के वर्गीकरण अनुसार निर्धारित होती है।
3. **क्षतिपूर्ति शहरी भत्ता –** यह कुछ बड़े शहरों में कार्यरत लोक सेवकों को उनके जीवन यापन की सुविधा हेतु दिया जाता है।
4. **यात्रा भत्ता –** सरकारी कार्य से जब किसी कार्मिक को बाहर जाना होता है तो वह नियमानुसार यात्रा भत्ता का हकदार होता है।
5. **दैनिक भत्ता –** सरकारी यात्रा के दौरान कार्मिक की भोजन, निवास तथा आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु जो भत्ता दिया जाता है, वह दैनिक भत्ता कहलाता है। यह भत्ता यात्रा के स्थान, कार्मिक की पद स्थिति तथा वेतनमान से निर्धारित होता है। कुछ संगठनों में इसे 'पर डियम' भी कहते हैं।
6. **अवकाश यात्रा भत्ता –** केन्द्र सरकार के कर्मचारियों को परिवार सहित देश में घूमने के लिए यह भत्ता दिया जाता है, जो चार वर्ष में एक बार देय होता है। यह भत्ता भी कार्मिक की पद स्थिति से प्रभावित है
7. **अन्य भत्ते –** कुछ अन्य भत्ते इस प्रकार हैं –
   (i) शैक्षणिक सुविधा हेतु कनिष्ठ कार्मिकों के बच्चों की शिक्षा हेतु भत्ता मिलता है।
   (ii) पर्वतीय तथा ठण्डे क्षेत्रों में विशिष्ट भत्ता मिलता है।
   (iii) स्वास्थ्य सेवाओं की सुविधा के लिए चिकित्सा व्यय का पुर्नभरण या एक निश्चित भत्ता दिया जाता है।
   (iv) परियोजना क्षेत्रों में ' परियोजना ' भत्ता मिलता है।

(v) खतरनाक परिस्थितियों में कार्य करने वाले कार्मिकों को जोखिम भला दिया जाता है।

(vi) नर्सिंग तथा पुलिस जैसी सेवाओं में " मैस भत्ता" भी दिया जाता है।

(vii) कुछ पदों पर "वर्दी धुलाई भत्ता" भी मिलता है।

(viii) विशिष्ट सेवा के व्यक्तियों के पास कार्यरत कार्मिकों को भी पृथक से भत्ते मिलते हैं।

(ix) कुछ सेवाओं में यात्रा रियायत भी मिलती है।

(x) निर्धारित डयूटी अवधि से अधिक समय तक कार्य करने पर समयोपरि (ओवर टाइम) भत्ता देने का भी प्रावधान होता है।

3.3.3 ऋण एवं कटौतियां –

सरकारी कार्मिकों को देय वेतन में से नियमानुसार प्रति माह एक निश्चित राशि 'राज्य बीमा' के लिए तथा 'प्रावधायी निधि' के लिए आवश्यक कटौतियां की जाती हैं। ये कटौतियां कर्मचारी के निर्धारित खाते में जमा की जाती है। इस तरह एकत्र राशि पर ब्याज तथा बोनस भी देय होता है। इस राशि में से कर्मचारी समय– समय पर आवश्यकता पड़ने पर ऋण भी प्राप्त कर सकता है जिसे पुन: किश्तों में लौटाया जा सकता है। सामान्यत: लोक सेवकों को निम्न प्रकार के ऋण उपलब्ध होते हैं –

1. राज्य बीमा से ऋण
2. सामान्य प्रावधायी निधि से ऋण
3. वाहन हेतु ऋण
4. मकान निर्माण हेतु ऋण
5. स्थानान्तरण एवं दौरे के लिए अग्रिम राशि
6. कुछ कर्मचारियों को त्यौहार अग्रिम राशि भी मिलती है
7. अनाज खरीदने हेतु ग्रीष्म काल में फूड ग्रेन एडवांस
8. एक निर्धारित वेतनमान सीमा तक के कार्मिकों को सरकार द्वारा प्रति वर्ष लगभग एक माह के वेतन के बराबर बोनस भी दिया जाता है, जिसके नियम एक समान नहीं है।

3.4 मनोबल

संगठन की सफलता, उपलब्धियां और कुशलता वस्तुत: कार्मिकों के मनोविज्ञान अर्थात मन: स्थिति पर निर्भर रहती है। मन: स्थिति से ही मनोबल निःसृत होता है। एक लोक सेवक संगठन में काम करता है उसके प्रति उसकी उत्साही प्रवृति ही मनोबल है। इस उत्साही प्रकृति के कारण ही कार्मिक अधिक उपयोगी सिद्ध होता है। प्रशासन की शक्ति कार्मिक अधिक उपयोगी सिद्ध होता है। प्रशासन की शक्ति कार्मिकों में निहित होती है और कार्मिकों की शक्ति उनके उत्साह में निहित है। यदि कार्मिकों का मनोबल टूट जाए तो प्रशासन निर्जीव सा हो जाता है।

मनोबल की अवधारणा को स्पष्ट करने के लिए निम्नलिखित परिभाषाएं विचारणीय हैं–

एल. डी. व्हाइट– मनोबल एक व्यक्ति या व्यक्ति समूह की अन्तर्निहित शक्ति है।

चेस्टर बर्नार्ड– मनोबल एक स्वप्रेरित प्रेरणा है, जो लोक सेवकों के दिल और दिमाग में निवास करती है।

मार्शल डिमॉक– मनोबल उस मानसिक स्थिति का नाम है जिसमें व्यक्ति आत्म–सम्मान के साथ कार्य कर सके। यह अनेक आन्तरिक गुणों के मेल से बनता है

जेम्स डी. मूने– मनोबल कतिपय मनोवैज्ञानिक गुणों का योग है, इन गुणों में निश्चय, आत्मविश्वास, उत्साह साहस आदि सम्मिलित हैं।

मार्सटीन मार्क्स के अनुसार " उच्चतम मनोबल में बौद्धिक तथा भावनात्मक दोनों गुण होते हैं। इसका बौद्धिक गुण ज्ञान, सूझबूझ तथा पारस्परिक विचार विमर्श पर बल से पैदा होता है और ये तीनों विशेषताएं संस्थात्मक चिन्तन, नियोजन व मूल्यांकन क्रियाओं में कर्मचारियों के सच्चे दिल से भाग लेने पर निर्भर करती हैं।

इस प्रकार मनोबल संगठन की जीवन शक्ति है, यह एक आन्तरिक गुण है। यह व्यक्तियों तथा समूहों की मानसिक अभिवृतियों में निवास करता है। यह किसी सामान्य उद्देश्य की पूर्ति में एक समूह के सदस्यों की निरन्तर लगन के साथ मिलकर ही कार्य करने की क्षमता है। इसमें तीन भावनाएं सम्मिलित हैं –(1) कर्मचारियों में अपनत्व की भावना (2) सामूहिक सफलताओं में स्वाभिमान की भावना, और (3) संगठन के

उद्देश्यों को पूरा करने हेतु दृढ निश्चय एव लगन की भावना। संक्षेप में मनोबल, उत्साह तथा भावनात्मक तुष्टि से सम्बन्धित एक मानसिक अवस्था है। प्रो. हेमेन ने ठीक ही लिखा है " मनोबल एक विशिष्ट मानसिक तथा भावनात्मक स्थिति है जो कार्य के प्रति व्यक्ति के दृष्टिकोण एवं इच्छा शक्ति को प्रभावित करती है।"

3.4.1 मनोबल को निर्धारित करने वाले घटक :

मनोबल को निर्धारित करने वाले घटकों को निम्न चार वर्गो में रखा जा सकता है –

अ. **संगठनात्मक घटक–** इनसे संबंधित घटकों में वेतन, अनुलाभ और निकट भविष्य में पदोन्नति के अवसर सम्मिलित हैं। इसके बारे में समता का बोध होना महत्वपूर्ण बात है। क्योंकि व्यक्ति दूसरों को मिलने वाली प्राप्तियों की तुलना अपनी प्राप्तियों के साथ करता है और इस आधार पर वह अपनी सन्तुष्टि की धारणा विकसित करता है। इसके अतिरिक्त, संगठनात्मक नीतियों की भूमिका भी मनोबल को प्रभावित करती है कि कर्मचारी की स्वतन्त्रता, गरिमा, मान्यता और सम्मान आदि पर कितना ध्यान दिया जाता है.

ब. **तात्कालिक कार्य वातावरण से सम्बन्धित घटक–** इस वर्ग में मनोबल को प्रभावित करने वाले प्रमुख घटक हैं–पर्यवेक्षण की गुणवत्ता, निर्णयन में सहभागिता, कार्य समूह का आकार, कार्य समूह में सम्बन्धों की प्रकृति और कार्यशील दशा।

स. **कार्य की विषय वस्तु से सम्बन्धित घटक–** इसमें कार्य का क्षेत्र और भूमिका की स्पष्टता प्रमुख है। कार्य का क्षेत्र जितना अधिक भिन्नता लिए होगा उतना ही समूचे उत्तरदायित्वों और अधिकारों में वृद्धि होगी जिससे अन्ततः कार्य संतुष्टि और मनोबल

बढ़ेंगे। चुनौतीपूर्ण कार्य से लोगों को अपनी कुशलताओं और योग्यता को सफलतापूर्वक पूरा–पूरा उपयोग करने का अवसर प्राप्त होता है। जहां तक भूमिका की स्पष्टता का संबंध है तो इससे कर्मचारियों को यह स्पष्ट रूप से पता होता है कि उनसे क्या अपेक्षा की जाती है और उनके निष्पादन का स्तर कैसा होना चाहिए। इनसे उनकी चिन्ता व तनाव कम होते हैं, उन पर दबाव घटता है और वे अधिक उत्साह से कार्य करते हैं।

द. **व्यक्तिगत घटक–** इनसे संबंधित घटकों का संबंध कर्मचारियों के व्यक्तिगत गुणो से है, जैसे कि उनकी आयु, अनुभव और उनका व्यक्तित्व। व्यक्तिगत विशेषताएं जैसे उपलब्धि, शक्ति, स्वतन्त्रता आदि की आवश्यकताओं और इनके प्रति लोगों की मनोवृतियों का प्रभाव भी मनोबल को प्रभावित करता है।

3.4.2 मनोबल को विकसित करने के उपाय –

मनोबल प्रत्येक संगठन की आन्तरिक शक्ति है, उसका आवश्यक तत्व है। उच्च मनोबल संगठन को सफलता की ओर अग्रसर करता है तथा उसकी कार्य कुशलता में वृद्धि करता है परन्तु मनोबल उत्पन्न नहीं किया जाता वह धीरे– धीरे विकसित किया जाता है। थियो हेमेन के शब्दों में, मनोबल कार्य की स्थिति में कुछ ऐसी शर्तों को पूरा करके विकसित किया जा सकता है जो इसके अनुकूल हो। "मनोबल को विकसित करने के लिए सुझाये गये उपायों में से मुख्य निम्न प्रकार हैं –

1. **कार्य करने की उचित दशाएं–** यदि कार्य करने की दशाएं सन्तोषजनक हैं तो कर्मचारी उत्साह के साथ अपने दायित्वों को पूरा करते हैं, इसके विपरीत, यदि कार्य करने की दशाएं असन्तोषजनक हों तो कर्मचारियों का मनोबल गिर जाता है जिसका दुष्प्रभाव संगठन की कार्यक्षमता पर पड़ता है।
2. **प्रेरणादायक नेतृत्व–** मनोबल के विकास में प्रेरणादायक नेतृत्व का योगदान सर्वमान्य है। विशेषत: सैनिक एव व्यापारिक संगठनों में प्रभावशाली नेतृत्व का अत्यधिक महत्व होता है।
3. **उच्च अधिकारी का अधीनस्थों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण–** जब कर्मचारियों को यह मालूम रहता है कि उच्चाधिकारी उनसे सहानुभूति रखते हैं और उनके कल्याण के लिए प्रयत्नशील है तो उनके मनोबल का भी विकास होता है।
4. **संगठन के उद्देश्य की जानकारी–** इससे कर्मचारी में संगठन के प्रति उत्साह, लगन, रूचि आदि बनी रहती है तथा इससे कर्मचारी में संगठन के प्रति अपनत्व का भाव विकसित होता है।
5. **देश प्रेम व राष्ट्र भक्ति का विकास–** देश प्रेम एवं देश भक्ति जाग्रत होने पर कर्मचारी संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति में अपने आपको खपा देगा।
6. **कर्मचारियों की गरिमापूर्ण स्थिति–** यदि कर्मचारी को यह अनुभव होता है कि संगठन में उसका भी कुछ महत्व है तो उसका मनोबल ऊंचा होता है।

7. **लोक सेवकों के प्रति जनता की सदभावना–** इससे कर्मचारियों का मनोबल उंचा उठता है। इसके विपरीत, यदि जनता लोक कर्मचारियों के काम में हमेशा मीनमेख ही निकालती रहे और उनकी आलोचना करती रहे तो उनका मनोबल गिरने लगता है।
8. **पुरस्कारों की व्यवस्था–** यदि कर्मचारी यह जानते हैं कि अच्छे काम करने पर उन्हें पुरस्कृत किया जाएगा तो उनके मनोबल का स्तर उंचा रहता है।
9. **कार्य के महत्वपूर्ण एवं मूल्यवान होने की अनुमति–** प्रो. व्हाइट के अनुसार कर्मचारियों के मनोबल को उच्च बनाने के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक कर्मचारी यह सोचे की जिस कार्य को वह कर रहा है, वह महत्वपूर्ण एवं मूल्यवान है। जब कर्मचारी ऐसा सोचने लगे कि जिस कार्य को वह कर रहा है, वह कोई महत्व नही रखता, तो यह संगठन के लिए घातक सिद्ध होता है।

3.4.3 अभिप्रेरण और मनोबल में अन्तर –

यद्यपि अभिप्रेरण और मनोबल के बीच प्रगाढ़ सम्बन्ध पाया जाता है और कुछ लोगों के अनुसार इन दोनों के सजातीय अर्थ हैं, लेकिन इन दोनों के बीच निम्नलिखित अन्तर है –

1. अभिप्रेरणा व्यक्तिगत होती है जबकि मनोबल सामूहिक स्तर पर सक्रिय होता है
2. अभिप्रेरणा उन घटकों में से मात्र एक घटक है जो व्यक्ति के व्यवहार और निष्पादन के कारण की व्याख्या करता है जबकि मनोबल समूहगत कार्य वातावरण में विद्यमान सभी तत्वों के समग्र प्रभाव की व्याख्या करता है।
3. उच्च अभिप्रेरणा से व्यक्ति को उच्च मनोबल का अहसास होता है। लेकिन उच्च स्तरीय मनोबल से उच्च स्तरीय अभिप्रेरणा मिलेगी ही, यह आवश्यक नहीं है। मनोबल और अभिप्रेरणा के बीच कारण एवं परिणाम का सम्बन्ध सुदृढ़ नहीं है।
4. अभिप्रेरणा प्रतिफल और दण्ड दोनों के संयोजन द्वारा ही प्रदान की जा सकती है, परन्तु मनोबल सिर्फ सकारात्मक साधनों द्वारा ही निर्मित किया जा सकता है।
5. सामान्यतया संगठनों में मनोबल से सम्बन्धित पहलुओं के बजाए अभिप्रेरणा पर ही प्रत्यक्ष रूप से अधिक ध्यान दिया जाता है। यह मान लिया जाता है कि यदि अभिप्रेरणा पर पर्याप्त ध्यान दिया जाता है तो मनोबल की देखभाल स्वत: हो जाती है।

3.4.4 मनोबल के परिणाम –

प्रशासन में लोक सेवकों के मनोबल के उंचे रहने के निम्नलिखित परिणाम होते है –

1. मनोबल से कर्मचारी अधिक परिश्रम करते हैं जिससे उत्पादन ज्यादा होता है।
2. उच्च मनोबल से स्वाभिमान एवं आत्म गौरव की भावना बनी रहती है जिससे कर्मचारी उत्साह के साथ काम करते हैं।
3. उच्च मनोबल से कर्मचारी सामूहिक रूप से कार्य करने को उत्साहित रहते हैं
4. मनोबल से ' निष्ठा' पैदा होती है जिससे कार्मिक संगठन को अपना समझकर काम करते हैं।

5. अनुशासन से मनोबल बनता है परन्तु मनोबल से भी अनुशासन बनता है। जब कर्मचारी मन लगाकर काम करने की ओर प्रवृत होते हैं तो वे अनुशासित रहते हैं। मनोबल के गिरते ही अव्यवस्था व शिथिलता फैल जाती है।
6. मनोबल से कर्मचारियों में उल्लास एवं प्रसन्नता जागृत होती है।
7. मनोबल से व्यक्ति अपनी ऊर्जा एवं क्षमता का अधिकतम उपयोग कर सकता है। संक्षेप में, मनोबल कार्मिक प्रशासन की उर्जा है, संचार शक्ति है। मनोबल को ऊंचा रखने के लिए प्रेरणाओं की आवश्यकता रहती है। संगठन में कार्य का बंटवारा इस ढंग से किया जाना चाहिए कि कर्मचारी अपने महत्व का अनुभव करे। यदि वह स्वयं को पांचवे पहिये के समान महसूस करने लगेगा तो उसकी कार्य कुशलता का स्तर एकदम नीचे आ जायेगा।

3.5 अभिप्रेरण

मानव शक्ति के व्यवहार को निर्देशित करने तथा उसका सहयोग प्राप्त करने की कला को अभिप्रेरण (प्रोत्साहन) कहते हैं। कर्मचारियों को अधिक से अधिक प्रेरणा देने तथा कार्य सन्तुष्टि की अनुभूति कराने के लिए जो युक्तियां की जाती हैं, प्रबन्ध की भाषा में उन्हीं को अभिप्रेरण कहा जाता है। अंग्रेजी भाषा का शब्द मोटिवेशन (MOTIVATION) मोटिव (Motive) से बना है जिसका शाब्दिक अर्थ है–'इच्छा शक्ति को जाग्रत करना।'

इस प्रकार अभिप्रेरण से तात्पर्य उस शक्ति से है जो व्यक्तियों में काम करने की इच्छा जाग्रत करती है।

अभिप्रेरण की कतिपय प्रमुख परिभाषाएं निम्नलिखित हैं –

माइकेल जे. जूसियन्स – " अभिप्रेरण स्वयं को अथवा किसी अन्य व्यक्ति को एक विशेष प्रकार के कार्य करने हेतु प्रोत्साहित करने की क्रिया है अथवा वांछित प्रति क्रिया प्राप्त करने के लिए सही बटन दबाना है।"

जूसियन्स एवं श्लेडर – " अभिप्रेरण किसी व्यक्ति को इच्छित कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करने की क्रिया है।"

रॉबर्ट ड्यूबिन – " अभिप्रेरण उन शक्तियों का समूह है जो किसी संगठन में एक व्यक्ति को काम प्रारम्भ करने तथा उस पर बने रहने के लिए प्रेरित करता है।"

संक्षेप में अभिप्रेरण से आशय मनोवैज्ञानिक उत्तेजना से है, जो व्यक्तियों को कार्य के लिए प्रोत्साहित करती है, कार्य पर बनाये रखती है तथा अधिकतम कार्य संतुष्टि प्रदान करती है।

3.5.1 अभिप्रेरण के उद्देश्य –

अभिप्रेरण प्रदान करने के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1. कर्मचारियों को प्रोत्साहित करके उनके मनोबल को बढ़ाना
2. कर्मचारियों की आर्थिक, वैयक्तिक,सामाजिक व मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि करना,

3. कर्मचारियों से स्वैच्छिक सहयोग प्राप्त करना
4. कर्मचारियों की कार्यक्षमता तथा उनके मनोबल में सन्तुलन स्थापित करना
5. मधुर श्रम सम्बन्धों की स्थापना करना
6. बाहर से थोपे गये नियन्त्रण के स्थान पर कर्मचारियों में आत्म नियन्त्रण की प्रवृति जाग्रत करना,
7. परस्पर सहयोग एवं सहकारिता की भावना प्रोत्साहित करना,
8. प्रबन्धक को इस सत्य की जानकारी कराना कि कर्मचारी केवल आर्थिक मनुष्य ही नहीं है वरन जीवन के अन्य मूल्य भी उसे कार्य हेतु प्रेरित करते हैं।

3.5.2 अभिप्रेरण का महत्व –

अभिप्रेरण के महत्व की दृष्टि से निम्नलिखित बिन्दु उल्लेखनीय हैं –

1. प्रशासनिक संगठन के कार्मिकों को आवश्यक प्रोत्साहन प्रदान करने से निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करना अत्यन्त सरल व सुलभ हो जाता है।
2. अभिप्रेरण द्वारा कार्मिकों के मनोबल को ऊंचा रखने में सहायता मिलती है तथा उनमें निराशा व असन्तोष की भावना उत्पन्न नहीं हो पाती ।
3. वित्तीय व अवित्तीय प्रोत्साहन से सौहार्दपूर्ण मानवीय सम्बन्धों की स्थापना को बल मिलता है।
4. कार्मिक संगठन में स्थायी सेवा प्रदान करने के लिए उत्सुक रहते हैं तथा दूसरी संस्थाओं में नहीं जाते।
5. इससे मधुरतम श्रम सम्बन्धों की स्थापना में सहायता मिलती है जिससे अन्ततः उत्पादकता में वृद्धि होती है।
6. अभिप्रेरण के फलस्वरूप कार्मिकों की प्राथमिकता व गौण सभी प्रकार की आवश्यकताओं की सन्तुष्टि हो जाती है ।
7. कार्मिकों से स्वैच्छिक सहयोग प्राप्त करने का यह एक श्रेष्ठ व स्वस्थ साधन है।

3.5.3 अभिप्रेरण के प्रकार –

अभिप्रेरणाओं को मुख्यत: 4 भागों में विभक्त किया जा सकता है – (1) धनात्मक अथवा सकारात्मक अभिप्रेरण (2) ऋणात्मक अथवा नकारात्मक अभिप्रेरण (3) मौद्रिक अभिप्रेरण (4) अमौद्रिक अभिप्रेरण ।

1. **धनात्मक अथवा सकारात्मक अभिप्रेरण –** इस अभिप्रेरण का आशय उस प्रक्रिया से है जिसके द्वारा लाभ या पारिश्रमिक का प्रलोभन देकर कर्मचारियों को स्वेच्छा से काम करने के लिए प्रेरित किया जाता है। सकारात्मक अभिप्रेरण के कई रूप हो सकते हैं – नकद पारिश्रमिक देना, कुशल व योग्य कर्मचारियों के विषय में सूचनाएं प्रसारित करना, मान सम्मान देना, पदोन्नति के अवसर प्रदान करना, श्रेष्ठ कार्य के लिए पुरस्कृत करना आदि। ऐसा अभिप्रेरण कर्मचारियों के मनोबल को उंचा उठाता है। उनकी परिवेदनाएं दूर करता है

तथा उन्हें आत्माभिव्यक्ति का अवसर प्रदान करता है। यह कर्मचारियों को आनन्द व सन्तुष्टि की अनुभूति कराता है तथा निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु उनको सहयोग के लिए प्रेरित करता है। वर्तमान युग में अभिप्रेरण का यह रूप सर्वाधिक लोकप्रिय है।

2. **ऋणात्मक अथवा नकारात्मक अभिप्रेरण –** इसका उद्देश्य भी धनात्मक अभिप्रेरण की भांति, अन्य व्यक्तियों को अपनी इच्छानुसार कार्य करने हेतु अभिप्रेरित करना है किन्तु इस तकनीक का आधार भयपूर्ण दबाव होता है। ऐसे अभिप्रेरण के समर्थकों की यह मान्यता है कि व्यक्तियों को कभी– कभी भय, डर, दबाव के दण्ड के आधार पर भी अभिप्रेरित किया जा सकता है। उदाहरण के लिए यदि कोई कर्मचारी देर से आने का आदि हो गया है तथा अपने कार्य में सुधार नहीं करता है तो वेतन काटने या काम से पृथक करने की धमकी दी जा सकती हे। ऋणात्मक अभिप्रेरण के कई रूप हो सकते हैं – डांटना, फटकारना, मौद्रिक दण्ड देना, जबरन छुट्टी देना, नौकरी से अलग करना, सेवानिवृत करना, वेतन वृद्धि व पदोन्नति रोकना आदि।

   यद्यपि अभिप्रेरणा का यह रूप काफी प्रभावी होता है, किन्तु अत्यधिक कठोर होने के कारण अपवाद स्वरूप ही इसका प्रयोग करना चाहिए क्योंकि ऐसे कदम से असन्तोष व विद्रोह फैलने की आशंका रहती है।

3. **मौद्रिक अभिप्रेरण –** जब किसी कर्मचारी को कार्य के प्रतिफल स्वरूप दिया जाने वाला पारिश्रमिक मुद्रा के रूप में हो तो उसे वित्तीय या मौद्रिक अभिप्रेरण कहेंगे। यह अभिप्रेरण का सबसे अधिक लोकप्रिय माध्यम है। मौद्रिक अभिप्रेरण अधिकतर वेतन, मजदूरी, बोनस, प्रीमियम या लाभांश भागिता के रूप में होता है।

4. **अमौद्रिक अभिप्रेरण –** अवित्तीय अभिप्रेरण मानसिक व अदृश्य प्रकृति का होता है जिसका वित्त या मुद्रा से कोई सम्बन्ध नहीं होता। यह कर्मचारियों की मनोवैज्ञानिक व सामाजिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि करता है। इसके प्रमुख उदाहरण हैं : कार्य की प्रशंसा करना, कार्य की सुरक्षा प्रदान करना, श्रेष्ठतर कार्य की दशाएं प्रदान करना, उदार अवकाश नीति अपनाना आदि।

व्यक्तिगत बनाम सामूहिक अभिप्रेरण –

व्यक्तिगत अभिप्रेरण में व्यक्ति विशेष को ही अभिप्रेरित किया जाता है। पदोन्नति, मान्यता, प्रशंसा आदि इसके उदाहरण हैं।

सामूहिक अभिप्रेरण के अन्तर्गत व्यक्तियों के किसी समूह विशेष को समूह लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए अभिप्रेरित किया जाता है। अधिलाभांश समूह बोनस,सामूहिक पुरस्कार, विशिष्ट वार्षिक वृद्धि आदि इसके प्रमुख उदाहरण हैं।

3.5.4 अभिप्रेरण की विधियां व तकनीकें

अभिप्रेरण अथवा प्रोत्साहन की निम्नलिखित विधियां प्रयोग में लाई जाती हैं –

1. **उद्देश्यों के स्पष्टीकरण द्वारा अभिप्रेरण –** कार्मिकों को अभिप्रेरित करने का यह सबसे सरल तरीका है। प्रबन्धक कार्मिकों को संस्था के उद्देश्यों व लक्ष्यों की जानकारी दें तथा यह बतलाए कि उनका व्यक्तिगत हित संस्था के हित से अलग नहीं है।

2. **कुशल नेतृत्व द्वारा अभिप्रेरण –** प्रबन्धक कुशल नेता के रूप में कार्य करते हुए कर्मचारियों की कठिनाइयों को सुने एवं उन्हें दूर करने का प्रयास करे जिससे कि कर्मचारी निष्ठा पूर्वक काम कर सकें।
3. **स्वस्थ प्रतिस्पर्धा द्वारा अभिप्रेरण –** प्रबन्धक अन्य संस्थाओं के साथ स्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा की भावना पैदा करके संस्था के सभी कर्मचारियों को अभिप्रेरित कर सकते हैं जिससे वे एक साथ मिलकर प्रतिस्पर्धा में विजय पाने के लिए जुट जाऐं।
4. **सहकारिता द्वारा अभिप्रेरण –** कर्मचारियों को प्रबन्ध व निर्णयन में भागीदार बना कर भी उनको अभिप्रेरित किया जा सकता है। सहभागिता कर्मचारियों की मनोवैज्ञानिक आवश्यकता की सन्तुष्टि करती है जो उन्हें धन से प्राप्त नहीं हो सकती।
5. **चुनौती द्वारा अभिप्रेरण –** प्रबन्धक संस्था के लक्ष्य को चुनौती के रूप में रखें एवं कर्मचारीगण उस चुनौती को स्वीकार करलें तो उत्पादकता निश्चित ही बढेगी।
6. **प्रेरणाओं द्वारा अभिप्रेरण –** कर्मचारियों को मौद्रिक व अमौद्रिक प्रेरणाएं देकर भी अभिप्रेरित किया जा सकता है।
7. **अन्य तरीके –** अन्य तकनीकों में निम्न हैं –

(1) आदर्श आचरण प्रस्तुत करके (2) कार्य की सुरक्षा प्रदान करके (3) कल्याणकारी सुविधाएं देकर (4) पदोन्नति व विकास आदि के अवसर देकर (5) कार्यदशाएं सुखद बनाकर (6) प्रशिक्षण की व्यवस्था करके, इत्यादि।

3.5.5 अभिप्रेरण को प्रभावित करने वाले घटक

एक सफल अभिप्रेरण के लिए आवश्यक है कि मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं के साथ– साथ उसकी सामाजिक व मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि का भी ध्यान रखा जाए। इस दृष्टि से अभिप्रेरण को दो वर्गो में विभक्त किया जा सकता है।

1. **मौद्रिक अभिप्रेरणाएं–** ये कर्मचारी को अपनी भोजन, वस्त्र और आश्रय सम्बन्धी आवश्यकताएं अपनी इच्छानुसार पूरा करने में समर्थ बनाती हैं। साधारण मौद्रिक अभिप्रेरणाएं मजदूरी, वेतन, प्रीमियम, इनाम एवं विनियोग पर आय के रूप में देती है।
2. **अमौद्रिक अभिप्रेरणाएं–** कई मार उत्पादन मढ़ाने में मौद्रिक अभिप्रेणाओं के अतिरिक्त अमौद्रिक अभिप्रेरणाएं महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। कतिपय प्रमुख अमौद्रिक अभिप्रेरणाएं हैं– भय का अभाव, नौकरी या जायें की सुरक्षा, मान्यता, प्रशंसा एवं सत्कार, योग्य नेतृत्व, रचनात्मक प्रवृति, सहभागिता आदि।

अभिप्रेरित करने वाले घटक

क. मौद्रिक या वित्तीय
1. मजदूरी
2. प्रीमियम
3. बोनस
4. इनाम
5. विनियोग पर आय

ख. अमौद्रिक या अवित्तीय
1. भय का अभाव
2. जान व सुरक्षा
3. मान्यता, प्रषंसा,सत्कार
4. शीघ्र उन्नति के अवसर
5. योग्य नेतृत्व
6. अन्य व्यवहार
7. व्यक्तिगत स्थिति
8. जिज्ञासा
9. रचनात्मक प्रवृति
10. कार्य के प्रति गौरव
11. सहभागिता
12. अधीन कर्मचारियों में सद्–भावना से रूचि लेना
13. जिम्मेदारी का प्रतिनिधान

3.5.6 अभिप्रेरण की विचारधाराएं –

अभिप्रेरण की विचारधाराओं को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है –

(1) परम्परागत विचारधाराएं (2) आधुनिक विचारधाराएं

(1) परम्परागत विचारधारा के अन्तर्गत निम्नलिखित तीन विचारधाराएं आती हैं –

1) **भय एवं दण्ड की विचारधारा –** इसके अनुसार धमकी देकर एवं दण्ड का भय पैदा करके किसी व्यक्ति से काम करवाया जा सकता है। औद्योगिक क्रान्ति के चरण में इसका महत्व काफी था लेकिन आजकल तो भय दिखाकर एवं दण्डित करके कार्य कराना अमानवीय समझा जाता है।

2) **पुरस्कार का सिद्धान्त –** इसके प्रतिपादक फ्रेडरिक डब्ल्यू0 टेलर हैं। इसके अनुसार काम का सम्बन्ध पारिश्रमिक से जोड़ देने से कर्मचारी अधिक काम करने के लिए अभिप्रेरित होगा अर्थात अधिक पैसा कमाने के लिए वे अधिक कार्य करेंगे। इसी मान्यता पर टेलर ने विभेदात्मक भर्ती पद्वति की अनुशंसा की। एडम स्मिथ की विचारधारा भी इसी से मिलती जुलती है, परन्तु पीटर ड्रकर के अनुसार मौद्रिक पुरस्कार से सन्तुष्ट होना पर्याप्त अभिप्रेरण नहीं है।

3) **केरट व स्टिक विचारधारा –** यह विचारधारा अभिप्रेरण हेतु पुरस्कारों को शर्त युक्त बना देती है। यह दृष्टिकोण कतिपय विशिष्ट परिस्थितियों में ही प्रभावशाली कहा जा सकता है। यह केवल उन्हें ही प्रभावी ढ़ंग से अभिप्रेरित कर सकती है जिनकी मनोवैज्ञानिक एवं सुरक्षा की आवश्यकताएं संतुष्ट नहीं हो सकी हैं।

(2) अभिप्रेरण की आधुनिक विचारधाराएँ –

इसमें कई विचारधाराएं प्रचलित हैं जिनमें निम्नलिखित महत्वपूर्ण हैं –

1) मैस्लो का आवश्यकता सोपान सिद्धान्त
2) डगलस मैकग्रेगर का एक्स–वाई सिद्धान्त
3) हर्जबर्ग की द्विधटक विचारधारा
4) आऊची का 'जैड' सिद्धान्त
5) लिकर्ट की प्रबन्ध पद्धति विचारधारा
6) अभिप्रेरण की प्रत्याशा विचारधारा

(1) मैस्लो का आवश्यकता क्रम सिद्धान्त –

सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक प्रो. ए एच. मैस्लो ने अपनी पुस्तक ' मोटिवेशन एण्ड पर्सनेलिटी (1943) ' में अभिप्रेरणा को मनुष्य की आवश्यकताओं पर आधारित बताते हुए कहा है कि मनुष्य पूर्णतया संतुष्ट कभी नहीं होता है। ज्यों ही उसकी एक आवश्यकता की पूर्ति होती है, उसकी दूसरी आवश्यकता जागृत हो जाती है इसी तरह आवश्यकताओं की पूर्ति की क्रमबद्ध प्रक्रिया अनवरत चलती रहती है। मैस्लो ने प्राथमिकता के अनुसार आवश्यकताओं को 5 श्रेणियों में विभाजित किया है –

प्रथम – शारीरिक आवश्यकताएं यथा–भोजन, आवास, काम इत्यादि

द्वितीय – सुरक्षात्मक आवश्यकताएं यथा–भौतिक एवं भावनात्मक रूप से, बाह्य खतरों, मौसम सम्बन्धी एवं आपराधिक गतिविधियों से सुरक्षा।

तृतीय – सामाजिकता की आवश्यकताएं यथा–प्रेम, अपनत्व, सौहार्द्र, आपसी सहयोग इत्यादि की आवश्यकताएं।

चतुर्थ – मान–यश की आवश्यकताएं यथा–सफलता, सम्मान, प्रस्थिति, पहचान तथा मान्यता सम्बन्धी आवश्यकताएं

पंचम – चरमोत्कर्ष की आवश्यकताएं यथा– आगे बढने की इच्छा, सफलता के साथ कार्य में निपुणता एवं स्वयं की एक प्राकृतिक पहचान की आवश्यकता।

(2) मैक्ग्रेगर का एक्स–वाई सिद्धान्त –

डगलस मैक्ग्रेगर ने अभिप्रेरणा से सम्बन्धित दो सिद्धान्त प्रस्तुत किये थे। उनका प्रथम सिद्धान्त ' एक्स' मानव प्रकृति के बारे में एक निराशावादी दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। यह सिद्धान्त मानकर चलता है कि व्यक्ति या कार्मिक कार्य नहीं करना चाहते वे प्रकृतित: आलसी होते हैं। उनकी कोई महत्वाकांक्षाएँ नहीं होती, वे किसी अन्य व्यक्ति के नेतृत्व में कार्य करना चाहते हैं और वे मूलत: वैयक्तिक आर्थिक प्रेरणाओं से ही अभिप्रेरित होते हैं। वे ऐसा प्रशासकीय नेतृत्व पसंद करते हैं जो निर्देशात्मक व्यवहार करता है और जिसकी शैली नियंत्रण, दमन, प्रताड़ना और दण्डकारी होती है। कालान्तर में मानवीय व्यवहार के सूक्ष्म अध्ययन के पश्चात मैक्ग्रेगर ने अभिप्रेरणा का आशावादी ' कई' सिद्धान्त प्रस्तुत किया। वाई सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति स्वेच्छा से केवल कार्य ही नहीं करना चाहता, अपितु उसमें वह आनन्द की अनुभूति करता है, उस कार्य को श्रेष्ठतर तरीके से करना चाहता है। ऐसे व्यक्ति स्व–नियंत्रण और स्वयं के विकास की सम्भावनाओं से अभिप्रेरित होते हैं। ऐसे संगठन में प्रबन्धकों की भूमिका निर्देशन तक सीमित होती है और उस संगठन में प्रगति, स्वायत्तता तथा कुशल कार्यकर्ताओं को पुरस्कृत करने पर बल रहता है। सद्व्यवहार, उपयुक्त अवसर, अच्छा नियंत्रण, निर्देशन इत्यादि उसके कार्य निष्पादन को बढ़ा सकते हैं। केवल वित्तीय प्रलोभन ही नहीं, अपितु कार्य की प्रशंसा और स्वाभिमान की रक्षा भी उसकी अभिप्रेरणा में वृद्धि करते हैं।

(3) अभिप्रेरण का आरोग्य (हाइजीन) सिद्धान्त –

हर्जबर्ग द्वारा प्रतिपादित यह सिद्धान्त मनुष्य की आवश्यकताओं को दो समूहों या घटकों में बांटता है -

(1) आरोग्य तत्व (हाइजीन फैक्टर्स)

(2) अभिप्रेरक तत्व (मोटिवेटर फैक्टर्स)

मनोवैज्ञानिक चिन्तक हर्जबर्ग के अनुसार जब कोई कार्मिक अपने कार्य से असंतुष्ट होता है तो उसके असंतोष के लिए उत्तरदायी कारकों में प्रमुख कारण वह वातावरण होता है, जिसमें वह कार्य करता है इसे ही ' आरोग्य तत्व' कहा गया है। इस आरोग्य तत्व को प्रभावित करने वाले कारक हैं – संगठन की नीति, वेतन, प्रास्थिति, अधीनस्थों एवं पर्यवेक्षक से सम्बन्ध एवं अन्तवैयक्तिक सम्बन्ध ' इसी तरह जब कोई कार्मिक अपने कार्य से संतुष्ट होता है तो उसे

अभिप्रेरक तत्व' कहा गया है। अभिप्रेरक तत्वों में – कार्य उपलब्धियां, पहचान या मान्यता, उत्तरदायित्व, उन्नति तथा विकास के लिए अवसर इत्यादि सम्मिलित हैं। इस प्रकार कार्मिकों को कार्य के प्रति असंतुष्टि कम करने के लिए ' आरोग्य तत्वों' की तरफ अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए।

(4) आऊची का Z (जैड) सिद्धान्त – इसका श्रेय प्रो. विलियम जी. आऊची को है जिन्होंने जापानी बड़ी कम्पनियों का वर्षो तक अध्ययन किया जिसके अनुसंधान का यह परिणाम है। उनकी पुस्तक वर्ष 1981 में Theory–Z नाम से प्रकाशित हुई।

आऊची के अनुसार जापान के उत्थान एवं औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि कार्मिकों की संगठन में सन्निहितता, विश्वास, मर्मज्ञता एवं आत्मीयता की देन है। मर्मज्ञता का आशय है कि कार्मिकों के व्यक्तित्व की ऐसी पहचान जिससे फोरमैन यह जानता है कि कौन कार्मिक, किस कार्मिक के साथ अच्छी प्रकार काम कर सकता है। प्रो. आउची के अनुसार जापानी प्रबन्ध का सारतत्व विश्वास (Trust) मर्मज्ञता (Subtlety) तथा आत्मीयता (Intimacy) इन तीन शब्दों में अन्तर्निहित हैं।

प्रो. आउची ने जापानी बड़ी–बड़ी कम्पनियों की उत्पादकता का राज अपने 8 वर्षो के अनुसन्धानों के माध्यम (1973–81) से जानने का प्रयास किया था। उनका निष्कर्ष था कि जापान की उत्पादकता का राज श्रेष्ठ प्रबन्धकों द्वारा उनके कार्मिकों में निहित विश्वास, आत्मीयता, कार्मिकों के व्यवहार तथा व्यक्तित्व के संबंध में प्राप्त सूक्ष्म जानकारी (मर्मज्ञता) में सन्निहित है। आउची के अनुसार विश्वास, मर्मज्ञता और आत्मीयता उत्प्रेरक का कार्य करते हैं।

(5) लिकर्ट की प्रबन्ध पद्वति विचारधारा –

रेन्सिस लिकर्ट ने 4 प्रकार की प्रबन्ध पद्धतियां बतलायी है –

1. स्वार्थी सर्व सत्ताधारी (Exloitative Authoritative)
2. हितैषी सर्व सत्ताधारी (Benevolent Authoritative)
3. परामर्शीय (Consultative)
4. सहभागी (Participative)

प्रथम प्रकार की प्रबन्ध पद्धति कार्य केन्द्रित है। इसमें प्रबंधकीय प्रणाली परम्परागत विधि द्वारा नियन्त्रित की जाती है। चतुर्थ प्रकार की प्रबन्ध पद्वति सम्बन्ध लोकतंत्रात्मक प्रणाली है जिसमें टीम कार्य. आपसी सदविश्वास और सहभागिता है। द्वितीय एवं तृतीय पद्वति इन दोनों के बीच की अवस्था है जो क्रमश: 'एक्स' सिद्धान्त तथा 'वाई' सिद्धांत से मिलती जुलती है।

लिकर्ट ने अपने अनुसन्धान द्वारा प्रमाणित किया है कि चतुर्थ प्रकार की प्रबन्ध पद्वति के उत्पादन में अधिक वृद्धि होती है तथा यह कार्मिकों से संगठन में अधिक काम लेने में समर्थ है। यही एक ऐसी पद्धति है जिसमें प्रबन्धक अपने कर्मचारियों को कार्य के लिए अधिक अभिप्रेरित करके टीम भावना जाग्रत करते हैं और उनमें आपसी सद्विश्वास तथा प्रबन्ध के प्रति आस्था उत्पन्न करते हैं। लिकर्ट का कथन है कि " मनुष्य को मशीन का पुर्जा नहीं

समझकर मनुष्य समझा जाए तथा उसके साथ–साथ मानवता का व्यवहार करते हुए उसकी भावनाओं और अभिप्रेरणा को स्वीकारते हुए संगठन के हित में काम में लेने के लिए प्रेरित किया जाए तो अधिक सफलता प्राप्त की जा सकती है।

6. **अभिप्रेरण की प्रत्याशा विचारधारा –**

इसका श्रेय विक्टर ब्रूम को है। इसको 'पथ लक्ष्य सिद्धान्त' भी कहा जाता है। यह विचारधारा अभिप्रेरण, निष्पादन और कार्य सन्तुष्टि के कारणों की व्याख्या प्रस्तुत करती है। इससे पता चलता है कि लोग किसी अन्य व्यवहार की तुलना में इस प्रकार को ही वरीयता क्यों देते हैं।

प्रत्याशा विचारधारा के अनुसार कोई व्यक्ति किसी निश्चित तरीके से कार्य करने के लिए तभी अभिप्रेरित होता है जब (i) उसे यह विश्वास हो जाए कि उस तरीके से कार्य करने से उसे प्रत्याशित परिणाम या पुरस्कार प्राप्त होगा, और (ii) वह पुरस्कार उसकी आवश्यकता को सन्तुष्ट करने के लिए महत्वपूर्ण है।

इस प्रकार किसी व्यक्ति दारा अर्थ पूर्ण पुरस्कार प्राप्त करने के लिए उच्च निष्पादन किया जाना सम्भव है और जबकि उसके द्वारा उच्च स्तरीय निष्पादन से अर्थपूर्ण पुरस्कार की प्राप्ति होती है, जो कि उसकी आवश्यकता की संतुष्टि में सहायक है। अत: इस विचारधारा के अनुसार व्यक्ति की अभिप्रेरणात्मक शक्ति या स्तर का निर्धारण इस तरह से होता है –

अभिप्रेरणात्मक स्तर = प्रत्याशा × मध्यमता × संयोजकता

यहां प्रत्याशा का विस्तार 0 से 1 तक, मध्यमता का विस्तार 0 से 1 तक तथा संयोजकता का विस्तार 1 से 1 तक है।

प्रत्याशा विचारधारा को समझने के लिए तीन चरों के बीच आपसी सम्बन्ध को समझना जरूरी है –

1. **प्रतिफल वरीयता –** व्यक्ति नियत परिणाम या प्रतिफल को कितना महत्व देता है जिसे कि वह अपने कृत्य द्वारा प्राप्त कर सकता है। यह व्यक्ति की असंतुष्ट आवश्यकताओं की ओर संकेत करता है।
2. **निष्पादन और प्रतिफल के बीच सम्बन्ध –** व्यक्ति को इस बात पर कितना विश्वास है कि वह अपने उच्चस्तरीय निष्पादन के द्वारा वांछित प्रतिफलों की प्राप्ति कर सकता है।
3. **प्रयास और निष्पादन के बीच सम्बन्ध –** व्यक्ति को इस बात पर कितना विश्वास है कि उसमें उच्च स्तरीय निष्पादन करने की क्षमता है और यदि वह प्रयत्न करे तो ऐसा कर सकता है। प्रत्याशा विचारधारा को हम निम्न रूप में समझ सकते हैं–

वैयक्तिक प्रयास→वैयक्तिक निष्पादन→ संगठनात्मक प्रतिफल→वैयक्तिक लक्ष्य

(प्रत्याशा विचारधारा का सरलीकृत प्रतिरूप)

चित्र संख्या 3.2

प्रत्याशा विचारधारा यह स्पष्ट करती है कि उच्च स्तरीय अभिप्रेरण तभी होगा जब व्यक्ति को यह विश्वास होता है कि प्रयत्न एवं निष्पादन में, निष्पादन एवं प्रतिफल में और प्रतिफल एवं सन्तुष्टि में प्रत्यक्ष सम्बन्ध है।

इस दृष्टि से प्रत्याशा विचारधारा प्रबन्धकों को निम्नांकित दिशा निर्देश देती है –

1. प्रबन्धकों को उन प्रतिफलों की रूपरेखा बनानी चाहिए जिन्हें कर्मचारी महत्व देते हैं।
2. निष्पादन स्तर को मात्रा, गुणवत्ता और लागत के मानकों के सन्दर्भ में परिभाषित करना चाहिए।
3. प्रत्याशित प्रतिफलों और वांछनीय निष्पादन के बीच तालमेल होना चाहिए।
4. संयोजकता, प्रत्याशा और माध्यमता के सम्बन्ध में कर्मचारियों के विश्वास को प्रबन्धकों दारा प्रस्तावित किया जा सकता है।
5. प्रबन्धकों द्वारा प्रतिपुष्टि प्रणालियों की संरचना इस तरह से करनी चाहिए ताकि उन्हें यह जानकारी मिल सके कि कर्मचारीगण अपनी आवश्यकताओं, कार्यो और कार्य वातावरणों के बारे में क्या सोचते हैं। इनसे सम्बन्धित सूचनाओं और समंकों के आधार पर अभिप्रेरणात्मक प्रणाली को सुधारा जा सकता है।

निष्कर्ष – संक्षेप में, प्रबन्ध के अन्य कार्यो की भांति अभिप्रेरण एक महत्वपूर्ण प्रबन्धकीय प्रकार्य है जो मानव शक्ति के साथ व्यवहार करता है। जॉर्जटैरी ने इसे उत्प्रेरण की संज्ञा दी है। यह वह प्रकार्य है जो लोगों को प्रोत्साहित करके उन्हे वांछित दिशा की ओर अग्रसर करता है।

3.6 आचरण के नियम

एक पुरानी कहावत है कि "यथा राजा तथा प्रजा" अर्थात जनता राजा के आचरण का अनुसरण करती है। अत: राजा को अपना आचरण आदर्श रखना चाहिए। कौटिल्य के शब्दों में ' 'राजा का जो शील हो वही शील प्रजा का भी होता है। यदि वह उद्‌यमी हो तो प्रजा उद्‌यमी और प्रमादी हो तो प्रजा प्रमादी हो जाती है। आधुनिक लोकतान्त्रिक शासन प्रणालियों में राजा का स्थान मन्त्रियों तथा लोक कर्मचारियों ने ले लिया है। अत: उनके आचरण को आदर्श रखने के लिए तथा उन्हें दी गई शक्तियों का दुरूपयोग न होने देने के लिए कुछ विशेष प्रकार के आचरण के नियमों का निर्माण किया जाता है। इन नियमों के समूह को " आचार संहिता" (Code of Conduct) कहा जाता है।

आचार संहिता नियम कर्मचारियों को अनुशासन में बनाये रखते हैं। जिनका पालन करना सरकारी कर्मचारियों के लिए अनिवार्य है। ये नियम तथा उपनियम लोक कर्मचारियों के व्यवहार का नियमन करते है और उन्हें इस बात से अवगत कराते हैं कि उन्हें क्या करना चाहिए।

3.6.1 आचार संहिता की आवश्यकता –

लोक सेवकों के लिए आचार संहिता की आवश्यकता निम्नलिखित कारणों से अपरिहार्य प्रतीत होती है–

1. **यथा राजा तथा प्रजा –** राज कर्मचारी जनता के प्रत्यक्ष सम्पर्क में आते हैं। अत: उनको अपने आचार का नैतिक स्तर ऐसा उंचा रखना चाहिए कि वह साधारण जनता के लिए आदर्श हो सके।

2. **सत्ता के दुरूपयोग रोकने के लिए –** आचार नियमों दारा कर्मचारियों को गलत कार्य को करने से रोका जा. सकता है।
3. **राजनीतिक तटस्थता बनाए रखने के लिए –** सरकारी कर्मचारियों में राजनीतिक निरपेक्षता अर्थात् तटस्थता का होना अपरिहार्य है। इसको लागू करने के लिए भी आचार नियम आवश्यक हैं।
4. **प्रशासनिक कुशलता के लिए –** आचार संहिता अस्तित्व से कर्मचारी अपने दायित्वों का निर्वाह कुशलता तथा चुस्ती के साथ करते हैं। आचार संहिता के भय से वे कर्तव्य विमुख और उच्छृंखल नहीं हो पाते।
5. **आचरण को नैतिक बनाए रखने के लिए –** आचार संहिता इसलिए आवश्यक है ताकि कर्मचारी अपने आचरण को एक उच्च नैतिक स्तर पर रखें जिससे कोई भी उन पर अंगुली न उठा सके।

इन कारणों से सभी सरकारें आचार संहिता बनाती हैं और उसको कर्मचारियों पर लागू करती हैं। वर्तमान समय में सर्वप्रथम जर्मनी में लोक सेवा के कर्मचारियों के लिए आचरण के नियम तैयार किये गये थे। जर्मनी और फ्रांस में ये नियम वहां कि संवैधानिक व्यवस्था के अंग हैं। इंग्लैण्ड, भारत और अमेरीका में इन नियमों का निर्माण प्रशासन द्वारा किया गया है।

3.6.2 भारत में सरकारी कर्मचारी आचार संहिता –

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 309 में राष्ट्रपति को यह अधिकार दिया गया है कि वह सरकारी सेवकों के लिए आवश्यक नियम बनाए। इसके तहत केन्द्रीय सरकार ने सन 1951 में ' अखिल भारतीय सेवा कानून' तथा ' अखिल भारतीय नियम' प्रसारित किये थे। इनमें समय–समय पर आवश्यकतानुसार संशोधन किया जाता रहा है। वर्ष 1969 में प्रशासनिक सुधार आयोग ने भी इस प्रश्न पर विचार किया था। संक्षेप में, भारत में लोक सेवकों से सम्बन्धित आचार नियम निम्नलिखित हैं –

1. **कर्तव्य पालन –** लोक सेवकों को सदैव अपने कर्तव्यों का पालन पूरी निष्ठा और ईमानदारी से करना चाहिए।
2. **राजनीति से पृथक रहना –** उन्हें किसी राजनीतिक गतिविधि में भाग नहीं लेना चाहिए।
3. **सदस्यता का निषेध –** लोक सेवकों को किसी ऐसे दल का सदस्य नहीं बनना चाहिए जो राजनीति में भाग लेता हो।
4. **आलोचना की मनाही –** लोक सेवकों को सार्वजनिक रूप से कोई आलोचना नहीं करनी चाहिए तथा अपने कर्तव्य के अतिरिक्त प्रेस या' रेडियो से कोई सम्पर्क नहीं करना चाहिए।
5. **चन्दा लेने का निषेध –** लोक सेवकों को राजनीतिक उद्देश्य से संग्रह किये जाने वाले किसी फण्ड में कोई धनराशि नहीं देनी चाहिए।
6. **उपहार लेने का निषेध –** उपहार ग्रहण करने के सम्बन्ध में यह नियम है कि यदि विवाहोत्सव, जन्म दिवस, अन्त्येष्टि या धार्मिक उत्सव में अधिकारी को सौ रुपए से अधिक मूल्य की कोई भेंट मिले तो उसका विवरण तुरन्त सरकार को देना चाहिए।

सरकार अपनी ओर से यह आदेश दे सकती है कि उसका क्या किया जाए अब रिश्तेदारों, मित्रों से उपहार स्वीकारने की सीमा दुगनी कर दी है, परन्तु विदेशी पदाधिकारियों आदि से उपहारों को स्वीकार करने की सीमा को 3000 रुपये से घटाकर 1000 रुपये कर दिया गया है ताकि इसे विदेशी अंशदान (विनियमन) अधिनियम के उपबन्धों के अनुरूप बनाया जा सके।

7. **दूसरे विवाह का निषेध –** कोई भी सरकारी कर्मचारी पहली पत्नी के जीवित रहते हुए दूसरा विवाह नहीं कर सकता है। सन्तान न होने आदि की विशेष अवस्था में यदि कोई व्यक्ति दूसरा विवाह करना चाहता है तो उसे सरकार से लिखित स्वीकृति प्राप्त करना आवश्यक है।

8. **सम्पत्ति सम्बन्धी नियम –** नियुक्ति के समय लोक सेवक को अपनी सम्पूर्ण अचल सम्पत्ति की सूची भी सरकार को देनी चाहिए। धनराशि की अधिकतम सीमा को समूह 'क' और समूह 'ख' के अधिकारियों के मामले में 5000 रुपए से बढ़ाकर 10,000 रुपये तक अन्य कर्मचारियों के मामले में 2500 रुपये से बढ़ाकर 5000 रुपये तक कर दिया गया है। वह हस्तान्तरण या दान द्वारा न अपने नाम पर और न पत्नी के और न परिवार के किसी सदस्य के नाम पर अचल सम्पत्ति प्राप्त कर सकता है। अचल सम्पत्ति में मोटर कार, फ्रिज, रेडियो, टेलीविजन भी सम्मिलित हैं।

9. **निजी व्यापार का निषेध –** कोई भी सरकारी कर्मचारी शासन की पूर्व स्वीकृति लिए बिना प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से किसी व्यापार या व्यवसाय में किसी प्रकार का कोई भाग नहीं ले सकता है। केवल सामाजिक या जन कल्याणकारी संस्था में अवैतनिक रूप से साहित्यिक, कलात्मक या वैज्ञानिक ढंग का कोई कार्य इसी शर्त पर कर सकता है कि इससे उसके सरकारी कार्यो के करने में किसी प्रकार की कोई कमी नहीं आएगी। सरकारी कर्मचारी अपने परिवार के किसी सदस्य के स्वामित्व वाले अथवा उसके द्वारा प्रबन्धित ऐसे किसी व्यापार या बीमा एजेन्सी अथवा कमीशन इत्यादि के समर्थन में प्रचार नहीं कर सकते।

10. **सट्टेबाजी का निषेध –** कोई भी लोक सेवक किसी प्रकार की सट्टेबाजी नहीं कर सकता है और न ही उसकी पत्नी या परिवार के अन्य सदस्य इस प्रकार का काम कर सकते हैं। इसी प्रकार वह सरकार से पूर्व स्वीकृति प्राप्त किये बिना रूपया उधार देने का काम भी नहीं कर सकते हैं।

11. **निकट सम्बन्धी की नियुक्ति का निषेध –** कोई भी सरकारी कर्मचारी अपने विभाग में अपने किसी नजदीकी रिश्तेदार को नियुक्त नहीं कर सकता है।

12. **प्राइवेट माल या व्यापार को बढ़ावा देने का निषेध –** केन्द्रीय लोक सेवा आचरण नियम के अनुसार सरकारी कर्मचारी किसी प्राइवेट कम्पनी अथवा संगठन तारा आयोजित किसी प्रतियोगिता अथवा सामाजिक समारोह में भाग न लें जिसका कि मुख्य उद्देश्य उनके माल अथवा व्यापार को बढ़ावा देना है।

13. **अचल सम्पति की छोटी–मोटी मरम्मत –** सरकारी कर्मचारी द्वारा अपनी सम्पत्ति की छोटी–मोटी मरम्मत के बारे में सरकार को सूचित करने की सीमा को 1000 रुपये से

बढ़ाकर 10,000 रुपये कर दिया गया है। अब सरकारी कर्मचारी को केवल तभी सूचित करना होगा जब मरम्मत का अनुमान 10,000 रुपये से अधिक बढ जाए।

14. **धर्म निरपेक्ष आचरण –** सरकारी कर्मचारी अपने व्यक्तिगत जीवन में कोई भी धर्म अपना सकता है फिर भी आम लोगों में धर्म निरपेक्षता के सिद्धान्त का अनुसरण करना चाहिए। कर्मचारी को साम्प्रदायिक प्रकृति के संगठनों में भाग नहीं लेना चाहिए।

15. **चौदह साल से कम आयु के बच्चों को नौकरी में रखे जाने की मनाही–** सरकारी कर्मचारियों द्वारा 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को नौकरी में रखे जाने की मनाही के बारे में केन्द्रीय लोक सेवा (आचरण) नियमावली में एक नया प्रावधान कर दिया गया है।

निष्कर्षत: सरकारी कर्मचारियों के आचरण के अनेक नियम हैं जो अपने देश के वातावरण के अनुसार स्थापित किये जाते हैं। इन नियमों से कर्मचारियों को अनुशासित किया जाता है।

3.7 अनुशासनात्मक विनियम

लोकसेवकों को चाहे कितनी भी सुविधाएं क्यों न प्रदान की जाऐं, उनमें से कुछ कर्मचारी तो ऐसे निकल आते हैं, जो अपने कर्तव्यों का समुचित पालन नहीं करते। अत: सरकारी कर्मचारियों के आचार व्यवहार पर नियंत्रण रखने के लिए 'आचार संहिता' बनाना आवश्यक हो जाता है, किन्तु आचार संहिता ' का उस समय तक कोई महत्व नहीं रह जाता, जब तक कि उसका पालन करवाने के लिए अनुशासन सम्बन्धी प्रक्रिया निर्धारित न की जाए।

3.7.1 अनुशासनात्मक कार्यवाही की आवश्यकता –

अनुशासन सम्बन्धी कार्यवाही नियोक्ता तथा कर्मचारी दोनों के हित में है। यह एक प्रकार का नियन्त्रण है जो अधिकारियों तथा अधीनस्थों दोनों के मध्य स्वस्थ सम्बन्धों की आधारशिला रखता है। यह कर्मचारियों को कर्तव्यनिष्ठ एवं ईमानदार बनाती है, जिससे प्रशासन की कार्य कुशलता में वृद्धि होती है। अनुशासन सम्बन्धी प्रक्रियाएं कर्मचारियों को अनैतिक आचरण करने से रोकती हैं।

यह धारणा अब पुरानी हो गयी है कि अनुशासन का उद्देश्य नकारात्मक होता है अर्थात कर्मचारियों को भयभीत अथवा आतंकित रखता है। वर्तमान समय में अनुशासन सम्बन्धी कार्यवाही का वास्तविक उद्देश्य सुधारवादी है। उसका लक्ष्य कर्मचारी के अनुचित कार्यो पर अंकुश लगाकर उनमें नैतिकता का विकास करना है

मेयर्स के शब्दों में "प्रभावशाली अनुशासन सकारात्मक, बुद्धिमतापूर्ण नेतृत्व तथा अधीनस्थों के इच्छुक सहयोग की उपज है।"

3.7.2 अनुशासनात्मक कार्यवाही के कारण –

व्हाइट ने लोक सेवकों के विरूद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही करने के अनेक अवसर और कारण बताए हैं–

1. कर्तव्य पालन में प्रमाद या ध्यान न देना,

2. कार्यकुशलता का न होना,
3. कानूनों का अथवा नियमों का उल्लंघन,
4. आज्ञा भंग,
5. अभक्ति या निष्ठा न होना
6. अनैतिकता,
7. ईमानदारी का अभाव
8. घूसखोरी तथा भ्रष्टाचार
9. नशाखोरी।

3.7.3 अनुशासनात्मक कार्यवाही के प्रकार –

अनुशासनात्मक कार्यवाही दो प्रकार की होती है : (1) अनौपचारिक तथा (2) औपचारिक।

अनौपचारिक कार्यवाही में कोई स्पष्ट रूप से दण्ड नहीं दिया जाता है किन्तु नियम भंग करने वाले कर्मचारी को उसके उच्च अधिकारी द्वारा उसके व्यवहार के बारे में नाराजगी स्पष्ट रूप से बता दी जाती है। ऐसी कार्यवाहियाँ कई प्रकार की हो सकती हैं : व्यवहार में उच्च अधिकारी द्वारा रूखापन दिखलाना, गैर महत्वपूर्ण कार्य सौंपना, विशेषाधिकार समाप्त कर देना, सत्ता में कमी कर देना, उससे सम्बद्ध मामलों में उससे परामर्श नहीं लेना।

अनुशासन की औपचारिक कार्यवाही तब की जाती है जब कानूनी दृष्टि से कर्मचारी का अपराध प्रमाणित हो जाता है। ऐसा दण्ड देने के लिए कानून द्वारा निर्धारित विशेष प्रक्रिया को अपनाना पड़ता है। ऐसी कार्यवाही को दो श्रेणियों में रखा जा सकता है – (1) प्रथम, लघु दण्ड जैसे चेतावनी, भर्त्सना, वेतन वृद्धि में देरी, ज्येष्ठता के अधिकारों को छीन लेना आदि। (2) द्वितीय कठोर दण्ड – निलम्बन, पदावन्नति, पदच्युति तथा आपराधिक अभियोजन। इन अनुशासनात्मक कार्यवाहियों को करने के लिए विभागीय अध्यक्ष की स्वीकृति लेनी पड़ती है और सम्बन्धित कर्मचारी को इनके विरूद्ध अपील करने का अधिकार रहता है।

3.7.4 भारत में अनुशासन के तरीके एवं प्रक्रिया –

भारत में भारतीय सिविल सर्विस (वर्गीकरण तथा अपील) नियमों के अनुसार लोक सेवकों को निम्नलिखित दण्ड प्रदान किए जाते हैं : (1) निन्दा (2) पदोन्नति या वेतन वृद्धि रोकना (3) वेतन से सरकारी हानि के लिए राशि काटना (4) विभाग से निकाल देना या (5) सरकारी सेवा से स्थायी निस्सारण। किसी भी सरकारी कर्मचारी को निजी क्षेत्र के कर्मचारियों की भांति स्वामी मनमाने ढंग से नहीं हटा सकता और उसे इस विषय में निम्नलिखित प्रक्रिया अपनानी होती है – (1) अनुशासनीय कर्मचारियों से उस पर लगाये गए आरोपों के संबंध में स्पष्टीकरण मांगना (2) यदि स्पष्टीकरण असन्तोषजनक हो या न दिया जाए तो उसके विरूद्ध आरोपों का निर्माण (3) यदि अनुशासनहीनता कर्मचारी के सरकारी सेवा में बने रहने के उसके विरूद्ध साक्षी प्राप्त करने में बाधा पहुंचने की सम्भावना हो तो कर्मचारी का निलम्बन (4)

कर्मचारी के विरूद्ध लगाये गये आरोपों की सुनवाई करना तथा उसे अपनी सफाई देने का समुचित अवसर प्रदान करना (5) जांच के परिणाम तैयार करना और रिपोर्ट देना (6) दण्ड का आदेश देना (7) अनुशासनीय व्यक्ति को इसके विरूद्ध अपील करने का अधिकार देना।

सरकारी कर्मचारी को कोई भी दण्ड दिये जाने का आदेश सरकार दारा लोक सेवा आयोग से परामर्श किये बिना जारी नहीं किया जाएगा।

सरकारी सेवा में पदावनति, पदच्युति आदि कठोर दण्डों के विरूद्ध अपीलें सुनने के लिए प्रशासनिक सुधार आयोग ने सिविल सेवा न्यायाधिकरणों की स्थापना की सिफारिश की थी।

निष्कर्ष – अनुशासनीय कार्यवाहियों से फिलहाल जितना असन्तोष तथा रोष उत्पन्न हो रहा है, उसका बड़ा अंश समाप्त हो सकता है। यदि ऐसी कार्यवाहियों की आसन देखरेख के लिए एक अधिकारी प्रत्येक विभाग में नियुक्त हो। उसका अन्य कर्तव्यों की साथ प्रधान कर्तव्य होगा कि अनुशासन सम्बन्धी सभी मामलों को अच्छी तरह तैयार कर। भविष्य में ऐसे मामलों को कार्यवाही के लिए प्रस्तुत करे।

3.8 सारांश

सामान्यत: यह कहा जा सकता है कि मानव संसाधन विकास एक प्रक्रिया है जिसमें किसी संगठन के कर्मचारियों की एक विनियोजित ढ़ंग से इस प्रकार सहायता की जाती है कि वे नवीन कार्य आवश्यकताओं एवं उच्चतर दायित्वों के प्रति कौशल प्राप्ति तथा एक स्वस्थ संगठनात्मक संस्कृति को विकसित करने में रूचि ले सके, जिससे संगठन में लक्ष्य तथा कार्मिकों की संतुष्टि का स्तर ऊंचा हो जाए। कार्मिकों को कार्यकुशल बनाने के लिए अनेक तरह के प्रोत्साहन दिये जाते हैं जिनमें वेतन प्रमुख है तथा अन्य तरह के प्रोत्साहन में विभिन्न तरह के भले इत्यादि हैं। संगठन की सफलता, उपलब्धियों और कुशलता विकसित करने के लिए कार्मिकों का मनोबल उच्च होना चाहिए जिससे कार्मिक उत्साह से काम करता रहे। अभिप्रेरण से मानव शक्ति का व्यवहार निर्देशित होता है जिससे सहयोग प्राप्त किया जा सकता है। कार्मिकों को अधिक से अधिक प्रेरणा देने तथा कार्य सन्तुष्टि की अनुभूति कराने के लिए जो युक्तियां की जाती है, प्रबन्ध की भाषा में उन्हीं को अभिप्रेरण कहते हैं।

कर्मचारियों को अनुशासन में बनाए रखने के लिए आचरण के नियम अपनाये जाते हैं जिनका पालन करना सरकारी कर्मचारियों के लिए अनिवार्य है। आचरण के नियम विभिन्न देशों में अपने देश के वातावरणानुसार विभिन्न तरह के होते हैं। आचार संहिता का महत्व अनुशासनात्मक विनियम अपनाने से होता है। अनुशासनात्मक विनियमों के बिना आचरण के नियमों को लागू करना कठिन हो जाता है अत: आचार संहिता के लिए अनुशासनात्मक विनियम अति आवश्यक हैं।

3.9 शब्दावली

मानव संसाधन विकास – संगठन में कार्यरत कार्मिकों के विकास, कौशल तथा कल्याण को महत्व देना।

संगठनात्मक विकास – किसी कार्यालय, कारखाने या संगठन को इस प्रकार परिवर्तित किया जाए कि वह कार्मिक विकास हेतु एक उपयुक्त वातावरण बना सके।

प्रोत्साहन – लोक सेवकों को कार्यकुशल बनाने के दिये जाने वाले विभिन्न लाभ।

यात्रा भत्ता – सरकारी कार्य पर जाने वाले कार्मिक को देय राशि।

मनोबल – कार्मिकों की मन: स्थिति।

अभिप्रेरण – मानव शक्ति के व्यवहार को निर्देशित करने तथा उसका सहयोग प्राप्त करने की कला।

धनात्मक अभिप्रेरण – कार्मिकों को लाभ या पारिश्रमिक का प्रलोभन देकर स्वेच्छा से काम करने के लिए प्रेरित करना।

मौद्रिक अभिप्रेरण – कार्मिक को प्रतिफल के रूप में मुद्रा देना।

अमौद्रिक अभिप्रेरण – कर्मचारियों को मुद्रा न देकर उनकी मनोवैज्ञानिक व सामाजिक आवश्यकताओं की संतुष्टि करना।

पुरस्कार का सिद्धान्त – काम का सम्बन्ध पारिश्रमिक से जोड़ना

केरट व स्टिक विचारधारा – पुरस्कारों को शर्त युक्त बनाना

एक्स सिद्धान्त – मानव प्रकृति के बारे में एक निराशावादी दृष्टिकोण।

बाई सिद्धान्त – मानव प्रकृति के बारे में आशावादी दृष्टिकोण।

मर्मज्ञता – कार्मिकों के व्यक्तित्व की ऐसी पहचान कि फोरमैन (प्रबंधक/अधिकारी) यह जान सके कि कौन कार्मिक, किस कार्मिक के साथ अच्छी प्रकार काम कर सकता है।

आचरण के नियम – कर्मचारियों को अनुशासन में बनाए रखने के लिए बनाये गये सरकारी नियम।

अनुशासनात्मक विनियम – आचार संहिता का पालन करवाने के लिए कार्मिकों के आचार व्यवहार पर नियंत्रण हेतु बनाये गये नियम।

3.10 अभ्यास प्रश्न

1. मानव संसाधन विकास की अवधारणा से आप क्या समझते है।
2. मनोबल को प्रभावित करने वाले तत्वों की विवेचना कीजिये।
3. अभिप्रेरण से आप क्या समझते है।
4. अनुशासनात्मक कार्यवाही की आवश्यकता एवं प्रकारों की विवेचना कीजिये।

3.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गौल, एस. एल. पब्लिक पर्सनल एडमिनिस्ट्रेशन, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशंस, नई दिल्ली
2. सिन्हा, वी. एम. , पर्सनल एडमिनिस्ट्रेशन, आर. एस. बी. ए. पब्लिशर्स, एस.एम.एस. हाईवे, जयपुर
3. रिपोर्ट ऑन पर्सनल एडमिनिस्ट्रेशन – एडमिनिस्ट्रेटिव रिफोर्म कमीशन, गर्वनमेंट, गर्वन्मेंट ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली
4. रिपोर्ट ऑफ द्वितीय एवं पाँचवी वेतन आयोग, मिनिस्ट्री ऑफ पर्सनल पब्लिक ग्रिवियंस एण्ड पेंशन, गर्वन्मेंट ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली

5. अवस्थी एवं अवस्थी, प्रशासनिक सिद्धांत, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा

इकाई–4

लोक सेवाओं में मूल्य एवं नैतिकता, तटस्थता एवं प्रतिबद्धता

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 मूल्य एवं नैतिकता
4.3 तटस्थता एवं प्रतिबद्धता
4.4 सारांश
4.5 शब्दावली
4.6 अभ्यास प्रश्न
4.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप समझ सकेंगे –

- लोक सेवाओं की संवैधानिक स्थिति,
- शासन संचालन में लोकसेवकों की भूमिका,
- लोकसेवाओं में मूल्य एवं नैतिकता, तथा
- लोकसेवाओं में कार्यरत लोकसेवकों के आचरण की तटस्थता और प्रतिबद्धता।

4.1 प्रस्तावना

लोकसेवाओं में मूल्य एवं नैतिकता के बारे में तो काफी कुछ कहा और लिखा गया है लेकिन आज के जटिल, उद्योग प्रधान और व्यावसायिक युग में लोक प्रशासन में मूल्य और नैतिकता की आवश्यकता पहले से कहीं अधिक है और इन पर अलग से विचार अपरिहार्य है। तत्पश्चात् यदि मूल्य और नैतिकता के साथ–साथ तटस्थता और प्रतिबद्धता जैसे तत्वों पर भी चर्चा की जाये तो निश्चित रूप से लोक सेवाओं का एक नया क्षैतिज और चरित्र विकसित होगा और लोगों की आशाओं के अनुकूल उसमें अधिक पैनापन और कर्त्तव्य के प्रति निष्ठा विकसित होगी।

इस इकाई में मूल्य और नैतिकता के साथ तटस्थता और प्रतिबद्धता संलग्न कर लोकसेवाओं के आयाम को एक नए शीर्ष पर दर्शाया जा सकता है जो सम्पूर्ण प्रशासन पर अपना दूरगामी प्रभाव छोड़ सकती है।

लोक नीति के रूप में अभिव्यक्त राज्य की इच्छाओं को क्रियान्वित करने का प्रमुख साधन लोक सेवाएँ अपरिहार्य अथवा अत्यधिक महत्वपूर्ण है। राज्य संबंधी दर्शन अब 'अहस्तक्षेप नीति' से हट कर 'सामाजिक कल्याण' की नीति पर आधारित हो गया है। इसके फलस्वरूप आधुनिक राज्य ने बहु विध कार्यो का उत्तरदायित्व ग्रहण कर लिया है। लोक सेवाएँ इन कार्यो को पूरा करती है।

संविधान निर्दिष्ट लक्ष्यों और आदर्शों की प्राप्ति में प्रशासकों एवं लोकसेवकों की भूमिका मंत्रियों और विधायकों से कम महत्वपूर्ण नहीं होती है। राज्य के कार्यक्षेत्र के बढ़ने के साथ सरकारी नीतियों के क्रियान्वयन में शासनतंत्र का प्रभाव भी बढ़ता जा रहा है। जिन दिनों सरकारें 'अहस्तक्षेप नीति' में विश्वास करती थी उन दिनों राज्य का कार्यक्षेत्र मात्र शान्ति और व्यवस्था बनाये रखने तक ही सीमित था, परन्तु आज औद्योगिक क्रांति के दूरगामी प्रभाव, तकनीकी क्षेत्र में अत्यधिक प्रगति और लोककल्याणकारी–समाजवादी विचारधारा अपनाये जाने के कार्यक्षेत्र का असाधारण रूप से विस्तार हुआ है। आज नागरिक जीवन का कोई भी पहलू राज्य के प्रभाव क्षेत्र के माध्यम से ही अपने निरन्तर बढ़ते हुए उत्तरदायित्वों का निर्वाह करता है। किसी देश का संविधान तथा नीति–निर्माता मंत्रीगण कितने ही अच्छे और योग्य क्यों न हो, परन्तु बिना दक्ष सेवीवर्ग के उस देश का शासन सफल नहीं हो सकता। राज्य की नीतियाँ चाहे कितनी ही अच्छी क्यों न हो उसके अच्छे परिणाम तभी निकल सकते हैं जब उन्हें कुशलतापूर्वक एव सत्यनिष्ठा के साथ क्रियान्वित किया जाये। वस्तुत: देश में अमन–चैन, व्यवस्था, स्थिरता और द्रुत आर्थिक विकास के लिए योग्य, दक्ष, क्षमताशील, प्रतिबद्ध प्रशासन होना नितान्त आवश्यक है।

लोक सेवा के महत्व को दर्शाते हुए ऑन एफ, आस्टिन ने अपनी पुस्तक 'इंगलिश गवर्नमेन्ट एण्ड पालिटिक्स' में लिखा है कि सरकार का कार्य केवल राज्य सचिव तथा विभागों के अन्य प्रधानों, मण्डलों के सभापति, संसदीय अवर सचिवों, कनिष्ठ अधिपति तथा विशिष्ट अधिपति, दूसरे शब्दों में मंत्रीगण द्वारा ही पूरा नहीं किया जा सकता। इन लोगों से यह आशा नहीं की जाती है कि वे कर एकत्र करें एवं लेखा परीक्षण, कारखानों का निरीक्षण, जनगणना आदि कार्य करें, हिसाब–किताब रखने, डाक के वितरण और समाचार पहुँचाने जैसी बात ही सम्पन्न करें। ऐसे चतुर्दिक कार्य तो उन अधिकारियों द्वारा सम्पन्न किये जाते हैं जिन्हें स्थायी लोक सेवक कहा जाता है। स्त्री–पुरूषों का यह विशाल समूह ही देश के एक छोर से दूसरे छोर तक विधि का पालन कराता है और इन्हीं के द्वारा जन–साधारण सरकार के निकट सम्पर्क में आता है। जनता की दृष्टि में इस निकाय का महत्व भले ही कम हो किन्तु मंत्रालयों के लिए काम करने वालों की यह सेवा सरकार के उन उद्देश्यों को, जिनके लिए सरकार विद्यमान है, पूरा करने के लिए कम आवश्यक नहीं।

ऊपर जिन तथ्यों का उल्लेख किया गया है उससे यह प्रमाणित होता है कि प्रशासन की सफलता का उत्तरदायित्व लोक सेवा पर है। प्रशासन के इन सेवीवर्ग को लोकसेवक कहा जाता है। राजनीतिक दलों के परिवर्तन का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। सरकार की अच्छी–से–अच्छी नीति भी अयोग्य लोकसेवा के कारण असफल हो सकती है। अत: लोक प्रशासन की कोई भी क्रिया योग्य और कुशल लोक सेवा के अभाव में पूरी नहीं की जा सकती। आज राज्य के लोक कल्याणकारी स्वरूप के कारण इसका मूल्य एवं महत्व और भी बढ़ गया है। दरअसल लोकसेवाओं के मूल्य जैसे–कार्यकुशलता, योग्यता, कर्त्तव्यनिष्ठा, सतर्कता तथा ईमानदारी के कारण ही एक उच्चकोटि प्रशासन, जो लोकोन्मुख एवं फलोन्मुख हो, विकसित हो सकता है।

4.2 मूल्य एवं नैतिकता

आधुनिक राज्य एक कल्याणकारी या प्राकृतिक न्याय राज्य है जिसमें स्वतन्त्रता प्राप्ति, न्याय, समानता और सम्मान तथा सम्पूर्णता को प्राप्त करने पर बल दिया जाता है। इस प्रकार के उद्देश्य लोकसेवा पर बल देता है और अनिवार्य रूप से मूल्यों, नियमों तथा नैतिकता के प्रश्नों को सामने ला खड़ा कर देता है। आधुनिक प्रशासन की बढ़ती हुई जटिलता के लिए व्यावसायिक ज्ञान तथा विशेषज्ञता की आवश्यकता होती है। ऐसी सेवा दिशा में आवश्यक है कि समान हित के प्रति वचनबद्धता तथा भक्ति की भावना होनी चाहिए। इसलिए प्रशासनिक व्यवहार तथा इसे प्रभावित करने वाले मूल्य अत्यधिक महत्वपूर्ण होते हैं।

मूल्य मानव व्यवहार के पीछे एक प्रचालन शक्ति है। मनुष्य जो कुछ करता है वह उसकी मूल्य संरचना के संदर्भ में समझा जा सकता है। मूल्य ही मनुष्य के नियम, मानक तथा लक्ष्य निर्धारित करते हैं। चुने हुए लक्ष्यों को प्राप्त करने या कार्य के उद्देश्यों को पूरा करने के साधनों के चयन में भी मूल्य मनुष्य को सहायता प्रदान करता है।

मूल्य प्रेरणा, इच्छा या आवश्यकता नही, कुछ और है। इसको प्रेरणा शक्ति के साथ अभिलाषीय की धारणा कहा गया है। लोक सेवा में मूल्य के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहा जा सकता है कि यह एक प्रत्यक्ष या परोक्ष धारणा है जो एक अभिलाषणियों का समूह, जिनकी अपनी पृथक विशेषता या व्यक्तित्व है, को उनके कार्य के उपलब्ध साधनों, शैलियों तथा लक्ष्यों को प्रभावित करता है। इससे कार्य सम्पादन में उत्साह के साथ–साथ अभिप्रेरणा का तत्व भी शामिल होता है।

मूल्य एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति, एक समूह से दूसरे समूह और एक समुदाय से दूसरे समुदाय में भिन्न– भिन्न होते हैं, वे स्थायी नहीं होते। समय के साथ तथा अन्य कई तत्वों के प्रभाव जैसे–राजनीतिक या आर्थिक परिवर्तन, सामाजिक या सैद्धान्तिक परिवर्तन आदि से परिवर्तित होते हैं। ये विभिन्न प्रकार के होते हैं, जैसे– सामाजिक मूल्य, ऐतिहासिक मूल्य, संस्थात्मक मूल्य, संरचनात्मक मूल्य, राजनीतिक मूल्य, व्यावसायिक मूल्य तथा व्यक्तिगत मूल्य। सामान्यत: प्रत्येक व्यक्ति सांस्कृतिक प्रभावों, विज्ञान तथा नवीनताओं, धर्म, जातीय प्रभाव और जीवन के अनुभवों के आधार पर अपनी मूल्य व्यवस्था निर्मित करता है।

कभी–कभी मूल्यों में टकराव भी आ जाता है। किसी व्यक्ति के व्यक्तिगत मूल्य उसके व्यावसायिक या संस्थात्मक मूल्य से टकरा सकते है। लोक अधिकारियों को इस प्रकार की दुविधा कई बार झेलनी पड़ती है। लोक सेवा में मूल्य समूहों के टकराव के कारण नैतिक समस्याएँ खड़ी हो जाती है और इसके फलस्वरूप कई प्रशन उपस्थित खड़े होते हैं, जैसे–

(1) क्या एक अधिकारी अपने व्यक्तिगत मूल्य का पालन करेगा जो स्वयं परिवार तथा मित्रों के प्रति उत्तरदायित्व का समर्थक है?

(2) व्यक्तिगत मूल्य की सार्वजनिक हित या व्यावसायिक उत्तरदायित्वों से टक्कर हो सकती है। इससे कई जटिल प्रश्न उत्पन्न हो जाते हैं। अत: व्यक्ति को उचित कार्य करना चाहिए,

परन्तु उचित क्या है? इसकी परिभाषा कौन करेगा और किसके लिए? और किस उद्देश्य के लिए?

(3) व्यक्ति को ईमानदार होना चाहिए परन्तु कैसे और कहाँ तक?

(4) व्यक्ति को अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए परन्तु किसके प्रति और कैसा?

(5) व्यक्ति को सार्वजनिक हित में कार्य करना चाहिए परन्तु सार्वजनिक हित की परिभाषा कौन करेगा?

उपरोक्त प्रश्नों की उपस्थिति में मूल्य निर्धारण का मापदण्ड निश्चित करना एक कठिन समस्या पैदा करता है। इसका अंजाम लोक सेवा के लिए लाभप्रद तो हो नहीं सकता। अत: समस्याएँ न केवल बनी रहती है बल्कि इनमें निरन्तर वृद्धि भी होती रहती है।

लोक सेवा में आवश्यकता इस बात की है कि व्यक्तिगत व व्यावसायिक तथा संस्थागत मूल्यों में समझौता होना चाहिए। प्रसिद्ध विद्वान पीटर ड्रकर के अनुसार संस्थात्मक तथा व्यक्तिगत मूल्य का संगम ही प्रशासन का सर्वोत्कृष्ट सिद्धान्त बन जाता है। मूल्य लोक सेवा के कार्यो के अंतिम निर्णायक होते हैं। प्रशासक वह व्यक्ति होता है जो निर्णय करता है। यदि वह निर्णय करने में असफल रहता है तो वह प्रशासक नहीं, केवल 'पद का अधिकारी' है। प्रशासक के रूप में उसके चरित्र पर बहुत 'दबाव रहता है। यदि वह किसी से डर जाता है तो उसका पतन होगा। यदि वह किसी की आलोचना जिसमें बदनामी एवं निन्दा भी शामिल है, सहन नहीं कर सकता तो वह भटक जायेगा।

आज लोकसेवक को उस व्यावहारिक तथा दर्शनात्मक बुद्धिमता के सामंजस्य की आवश्यकता है जिसमें अनिवार्य नैतिक गुण हो जो उसे बनाये रखें ताकि वह अपने कर्त्तव्यों का अच्छी तरह से पालन कर सकें। प्रसिद्ध लेखक हचिंसन ने कहा है कि लोक सेवा के पुरस्कार सार्वजनिक स्मरण, धार्मिक अनुष्ठान तथा आनन्दित लोगों के दीपों तक एक मनोरंजन यात्रा भले ही ना हो, इन वस्तुओं की चिंता उसे कदापि नहीं करनी चाहिए। उनको संतुष्टि, यदि वह असफल भी हो जाता है, तो इस बात से मिलेगी कि उसने मस्तिष्क के कठिनतम कार्यो में से एक को देखा और करने का प्रयास किया और यह कार्य जो सबसे अधिक चुनौतीपूर्ण मानवीय कार्यो में से एक था।

4.3 तटस्थता तथा प्रतिबद्धता

राज्य के नियमों और कानूनों को लागू करने में लोक सेवकों का आचरण निष्पक्ष होना चाहिए, राजनीति से उन्हें तटस्थ होना चाहिए तथा इस बात पर ध्यान नहीं देना चाहिए कि कौन–सा राजनीतिक दल सत्तारूढ़ है। लोक सेवक जनता के सेवक होते हैं इसलिए जो भी राजनीतिक दल सत्तारूढ़ हो उसकी सेवा करनी चाहिए। प्रसिद्ध लेखक ई. एन. ग्लैडेन ने अपनी पुस्तक 'दी सिविल सर्विस' में कहा है कि ऐसे लोक सेवक की धारणा बिल्कुल आधुनिक है जो तटस्थ विशेषज्ञों का व्यावसायिक समूह है तथा जो बिना दलीय भावना के निष्पक्ष ढंग से राष्ट्र की सेवा में संलग्न है।

जब तक शासकीय सेवा का आधुनिकीकरण नहीं हुआ था तब तक लोकसेवकों की राजनैतिक तटस्थता के विषय में कोई. परवाह नहीं की जाती थी। उस समय तो शासक अपने

साथ ही कर्मचारी लाता था और साथ ही कर्मचारी को ले जाता था। शासकीय सेवक वही होता था जो पूरी तरह से शासक के प्रति निष्ठा रखता हो। तटस्थ रहकर शासन की सेवा में नहीं रहा जा सकता था। अमेरिका में तो आज भी राजनैतिक तटस्थता की बात बड़ी अजीब समझी जाती है। वहाँ तो जैसे ही राष्ट्रपति बदलता है, अनेकों कर्मचारी बदल जाते हैं। अमेरिका को यदि अपवादस्वरूप छोड़ दिया जाये तो प्रजातांत्रिक देशों में शासकीय कर्मचारियों की तटस्थता एक अनिवार्यता है। यदि लोकसेवक तटस्थ नहीं रहेगा तो निष्पक्ष रहकर कार्य कर ही नहीं सकता। भारत में लोक सेवा की राजनैतिक तटस्थता को आचरण के नियमों में निर्धारित कर दिया गया है। नियमों में निम्नांकित प्रावधान है –

(1) शासकीय सेवा का कोई भी सदस्य राजनैतिक दल का सदस्य नहीं बन सकता।

(2) शासकीय सेवक किसी भी राजनैतिक दल को सक्रिय सहयोग भी नहीं दे सकता।

(3) राजनैतिक दल के अतिरिक्त भी यदि कोई संगठन राजनैतिक क्षेत्र में कार्य करता है तो शासकीय सेवक उसका भी सदस्य नहीं बन सकता और उसको भी सक्रिय सहयोग नहीं दे सकता।

(4) लोक सेवा के कर्मचारी राज्य की व्यावसायिक, स्थानीय स्वायत्त संस्था या संसद का चुनाव नहीं लड़ सकता।

(5) चुनाव में किसी भी उम्मीदवार का प्रचार नहीं कर सकता।

(6) वह अपना प्रभाव भी इस सम्बन्ध में उपयोग नहीं करेगा।

(7) लोक सेवक कहीं पर भी अपना मत शासन के विरूद्ध प्रकट नहीं करेगा। उसे शासन की नीति का समर्थन ही करना होता है क्योंकि लोकसेवक शासन का एक अंग है। शासन की नीति की सफलता उसका भी उत्तरदायित्व है।

लोक सेवा के राजनैतिक तटस्थता के सम्बन्ध में सभी विद्वानों की एक राय नहीं है। शासकीय लोक सेवकों को राजनैतिक क्षेत्र में तटस्थ रहना चाहिए अथवा नहीं इस सम्बन्ध में अलग–अलग विचार हैं। लोक सेवक भी तो एक स्वतन्त्र नागरिक है। इस नाते उसको राजनीति में भी सक्रिय भाग लेने का अधिकार प्राप्त होना चाहिए।

एक लोकतंत्रीय राष्ट्र में सभी नागरिकों के लिए यह वांछनीय है कि राज्य के मामलों में उनकी आवाज हो और जहाँ तक भी संभव हो, वे सार्वजनिक जीवन में सक्रिय रूप से भाग लें। लोक सेवा में पहले की अपेक्षा जनसंख्या का एक बड़ा अनुभव विद्यमान होता है और यह कि इसमें समाज का अत्यधिक शिक्षित एवं बुद्धिमान वर्ग सम्मिलित होता है। यह तथ्य इस बात को स्पष्ट कर देता है कि लोक सेवकों को नागरिकता के सभी प्रकार के अधिकारों से वंचित नहीं किया जाना चाहिए जब तक कि लोक हित संबंधी कुछ अन्य महत्वपूर्ण विचारणीय तथ्यों के कारण ऐसा करना अनिवार्य एवं अनुपेक्षणीय न हो जाये।

ऐसे सार्वजनिक मामलों के सम्बन्ध में जो दलीय वाद–विवाद के विषय नहीं है किसी भी विभाग के निकटतम सम्बद्ध सदस्यों को छोड़कर अन्य लोकसेवकों को लिखित रूप में अथवा सार्वजनिक मंच पर अपने विचार प्रकट करने की अधिक छूट दी जानी चाहिए, भले ही वे सरकारी प्रस्ताव के विरूद्ध हो। इसमें शर्त केवल यह है कि मामला सार्वजनिक हित से संबंधित

हो और लोक सेवक लिखकर या बोलकर अपने विचार व्यक्त करने का कार्य व्यक्तिगत रूप से करता हो तथा वह इस सम्बन्ध में समभाव बरतता हो।

वैसे तो विचार प्रकट करने की स्वतन्त्रता लोक सेवकों को दिये जाने की अनुशंसा अनेक विद्वानों ने की है परन्तु इस बात को भी स्वीकार किया जाता रहा है कि लोक सेवकों को राजनैतिक धरातल पर संगठित नहीं होना चाहिए। यदि शासकीय सेवक एक विशिष्ट राजनैतिक विचार को स्वीकार करते हुए संगठित हो गये तो वे निष्पक्ष रहकर अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह नहीं कर पायेंगे। शासकीय कार्य में निर्णय लेते समय वे यह सोचेंगे कि उनके दल को लाभ पहुँचाने वाला निर्णय होना चाहिए। किसी व्यक्ति से उनका सम्पर्क इसी आधार पर संचालित होगा। परन्तु शासन के लिए यह स्थिति भयंकर सिद्ध होती है। सच कहा जाये तो यह शासकीय लोकसेवक के शासन के विरूद्ध तोड़–फोड़ का कार्य होगा। इस कार्य पर नियन्त्रण लगाया जाना जरूरी है। यही कारण है कि अधिकांश मत इस बात पर सहमत है कि लोक सेवक को व्यक्तिगत रूप से विचार प्रकट करने का अधिकार प्राप्त होना चाहिए, संगठित रूप से विचार प्रकट नहीं किया जा सकता।

जहाँ तक लोक सेवक का संबंध है इनमें भी भेद स्थापित किया जा सकता है। सारे कर्मचारियों के कर्तव्यों की प्रकृति एक जैसी नहीं होती। लोक सेवकों में एक बड़ी संख्या ऐसे सेवकों की होती है जिनको अनवरत एक ही प्रकार का कार्य करना होता है। उसको शासन के नीति–निर्माण से कोई संबंध नहीं होता। ऐसे कर्मचारियों को यदि राजनैतिक कार्यवाहियों में सक्रिय रूप से भाग लेने का अधिकार भी दे दिया जाये तो कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता है। उदाहरण के लिए एक टाईपिस्ट या पोस्टमैन या किसी सरकारी कारखाने में काम करने वाला मजदूर यदि राजनीति में सक्रिय भाग लेता है तो उससे क्या अन्तर पड़ सकता है? ऐसे पद जिनमें शासन की नीति के निर्माण का या नीति के कार्यान्वयन का उत्तरदायित्व निहित होता है, राजनीति से अलग रखे जाने चाहिए। इसका सीधा–सादा अर्थ है कि एक ही जैसा कार्य करने वालों को निर्वाचन लड़ने का अधिकार हो। यदि वे चुनाव लड़ना चाहे तो उनको अपने शासकीय पद से त्यागपत्र देने की कोई आवश्यकता नहीं। लेकिन सभी विचारक इससे सहमत नहीं हैं।

नियमित कार्य करने वाले अपना निर्धारित कार्य करते हैं। शासन भी उनसे यही अपेक्षा रखता है कि अपने कार्य को पूरा करते रहें। यदि वे निर्धारित कार्य में ढील डालते हैं तो आचरण नियमों के अनुसार उन पर अनुशासनात्मक कार्यवाही की जाती है। एक निश्चित नियन्त्रण उनके लिए पर्याप्त है। उस नियन्त्रण के अतिरिक्त उनको पूरी स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए और ऐसा करने से शासन को किसी तरह की हानि नहीं होती क्योंकि ऐसे कर्मचारियों को न तो नीति बनाने में सहयोग देना है और न नीति के कार्यान्वयन में स्व–विवेक का प्रयोग करना है। हाँ, ऐसे लोग, जिनको यह काम वास्तव में करने होते हैं पूरी तरह से निष्पक्ष रहने चाहिए। यदि वे राजनीति में भाग लेंगे तो उनकी निष्पक्षता समाप्त हो जायेगी और जनता उनकी बातों में अविश्वास करने लगेगी। कर्मचारियों की निष्पक्षता में विश्वास हो तो यह न्याय के वातावरण के निर्माण में सहायक होती है।

यदि हम ब्रिटेन का उदाहरण लें तो हम पायेंगे कि वहाँ व्यक्तिगत रूप से विचार प्रकट करने की स्वतन्त्रता तो सब शासकीय कर्मचारियों को है। चुनाव लड़ने की तथा राजनीति में

सक्रिय भाग लेने की भी स्वतन्त्रता कर्मचारियों के एक बड़े वर्ग को है जो एक जैसा कार्य करने के लिए नियुक्त हैं।

जहाँ तक भारत का संबंध है यहाँ शासकीय कर्मचारियों को राजनीति से एकदम दूर रहना अनिवार्य है। लोकसेवक किसी भी पद पर क्यों न हो, राजनीतिक कार्यवाही में भाग नहीं ले सकता। अपने देश में हमने शासन की जिस पद्धति को स्वीकार किया है उसके समुचित संचालन के लिए यह आवश्यक है कि लोक सेवक –

(1) जो कि सरकार की नीति को प्रभावित करता हैं,

(2) या जिनके पास प्रशासकीय या निष्पादन शक्तियाँ हैं,

(3) या अपने पद के कारण अन्य किसी प्रकार से वे ऐसी स्थिति में है कि नागरिकों को प्रभावित कर सके,

(4) या जो विधानमण्डलों आदि में चुनावों के संचालन से संबंधित हैं,

(5) देश की चालू राजनीति से स्वयं को पृथक रखें।

संक्षेप में, भारत में लोक सेवकों के बीच में किसी प्रकार का अन्तर नहीं किया गया। सभी लोक सेवकों के लिए राजनीति को निषिद्ध ठहराया गया है।

4.4 सारांश

उपरोक्त विश्लेषण के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि मूल्य और नैतिकता का शासकीय दृष्टि से काफी महत्व है। लोक सेवाओं में इनका अभाव प्रशासन को निम्न धरातल पर ले जायेगा। जिस प्रकार व्यक्तिगत जीवन में मूल्य और नैतिकता अपनी एक विशिष्ट पहचान रखते हैं, उसी प्रकार सार्वजनिक जीवन में आदर्श 'शासन तभी उपलब्ध हो सकता है जब लोक सेवाओं में मूल्य और नैतिकता का समावेश हो और लोकहित को ध्यान में रखते हुए सभी प्रकार के गलत और जनविरोधी कार्यों से अपने को दूर रखा जाए। कुछ ऐसी ही स्थिति तटस्थता और प्रतिबद्धता जैसे विरोधाभास दिखने वाले तत्वों के अदभुत की है। तटस्थता निश्चित रूप से एक अच्छे लोक सेवक की पहचान है और नीति के प्रति प्रतिबद्धता, न की संकीर्ण राजनीतिक हितों के प्रति प्रतिबद्धता, शासकीय मूल्य को न केवल विकसित करेगा बल्कि लोगों में व्यापक विश्वास और हिम्मत पैदा करेगा। संक्षेप में, अध्ययन की यह इकाई उब मानवीय मूल्यों ओर आदर्शो को शासकीय धरातल पर एक पहचान देती है ताकि विश्वासपूर्ण, लोकोन्मुख एवं फलोन्मुख लोक सेवा अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह कर सके।

4.5 शब्दावली

- **मूल्य :** मानवीय मूल्यों की भांति शासकीय मूल्य भी होते हैं जिससे लोक सेवाओं का स्तर ऊँचा होता है।
- **नैतिकता :** गलत और निकृष्ट कार्यो से परहेज करते हुए नैतिकता से सम्बद्ध होकर आदर्श सेवाएँ उपलब्ध करना।
- **तटस्थता :** यथासंभव पक्षपात और संकीर्ण राजनीतिक गतिविधियों से दूर रहना और स्वतन्त्र तथा निष्पक्ष ढंग से कार्य का निष्पादन करना।

- **प्रतिबद्धता :** किसी कार्य अथवा लक्ष्य प्राप्ति के प्रति वचनबद्धता अर्थात् हर कीमत पर जैसे भी हो किसी चीज को समर्थन देना।
- **लोकोन्मुख :** जिसका झुकाव लोक हित की पूर्ति की ओर हो।
- **फलोन्मुख :** प्रशासन कुछ ऐसा प्रमाण दे कि उसने केवल वादा ही नहीं किया है बल्कि उसे निभाया भी है
- **दक्ष शासन :** ऐसा शासन जो उच्च कोटि का हो और उपयोगी हो।
- **राजनीतिक भक्ति :** नीति से अधिक राजनीतिक शासकों के प्रति समर्पण।

4.6 अभ्यास प्रश्न

1. लोक सेवा का क्या अर्थ है?
2. मूल्य की परिभाषा दें।
3. नैतिकता किसे कहते हैं?
4. तटस्थता का क्या अर्थ है?
5. प्रतिबद्धता का क्या तात्पर्य है?

4.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अवस्थी एवं अवस्थी भारत में लोक प्रशासन (छठा) संशोधित संस्करण, 2006
2. अवस्थी एवं अवस्थी लोक प्रशासन, 23वाँ संस्करण, 2006
3. दुबे, आर. के. : आधुनिक लोक प्रशासन, 5वाँ संस्करण, 2005
4. त्यागी ए. आर पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन : थ्योरी एण्ड प्रेक्टिस, छठा संस्करण, 2004

इकाई–5

संघ व राज्य लोक सेवा आयोग

इकाई की रूपरेखा

भाग–अ : संघ लोक सेवा आयोग

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 भर्ती अभिकरण की आवश्यकता

5.3 संघ लोक सेवा आयोग संवैधानिक उपबन्ध

5.4 संघ लोक सेवा आयोग का संगठन

5.5 कार्यकाल तथा पदच्युति

5.6 वेतन एवं सेवा दशाएँ

5.7 आयोग के कार्यो की प्रकृति

5.8 संघ लोक सेवा आयोग के कार्य

5.9 विभिन्न सेवाओं तथा पदों पर भर्ती

5.9.1 भर्ती पद्धतियाँ

(अ) सीधी या प्रत्यक्ष भर्ती

(ब) साक्षात्कार के माध्यम से भर्ती

5.10 आयोग की सलाह की परामर्शदात्री प्रकृति

5.11 आयोग का सचिवालय

5.12 वार्षिक प्रतिवेदन

5.13 संघ व राज्य लोक सेवा आयोग को तटस्थ एवं निष्पक्ष बनाने वाले तत्व

5.14 आयोग का आलोचनात्मक मूल्यांकन

भाग–ब : राजस्थान राज्य लोक सेवा आयोग

5.15 आयोग का ऐतिहासिक परिपेक्ष्य

5.16 आयोग की स्थापना

5.17 आयोग का संगठन

5.17.1 आयोग के सदस्यों की नियुक्ति

5.17.2 आयोग के सदस्यों का कार्यकाल

5.18 आयोग के सदस्यों का त्यागपत्र

5.19 आयोग के सदस्यों की पदच्युति

5.20 आयोग के सदस्यों के वेतन एवं भत्ते

5.21 आयोग का सचिवालय

5.22 आयोग के कार्य

5.23 आयोग का वार्षिक प्रतिवेदन
5.24 आयोग की कार्यप्रणाली का आलोचनात्मक मूल्यांकन
5.26 सारांश
5.26 शब्दावली
5.27 अभ्यास प्रश्न
5.28 संदर्भ ग्रन्थ सूची

5.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् –

- संघ लोक सेवा आयोग से संगठन और कार्यकरण का वर्णन कर सकेंगे,
- राजस्थान लोक सेवा आयोग के संगठन और कार्यप्रणाली का उल्लेख कर सकेंगे,
- संघ लोक सेवा आयोग और राजस्थान राज्य लोक सेवा आयोग के संगठन और कार्यप्रणाली में व्याप्त कमियों की जानकारी प्राप्त हो जाएगी, और
- आपको इस बात की व्याख्या करना आ जायेगा कि भारत में भर्ती अभीकरण को तटस्थ और निष्पक्ष बनाए रखने के लिए क्या प्रावधान किये गये हैं।

5.1 प्रस्तावना

लोक सेवा आयोग स्वतन्त्र संवैधानिक निकाय है। भारत में 1919 के भारत शासन अधिनियम द्वारा सर्वप्रथम एक लोक सेवा आयोग की स्थापना का विचार रखा गया, लेकिन 1919 अधिनियम लागू होने पर भी आयोग का गठन नहीं किया गया। 'ली आयोग' की अनुशंषा पर 1 अक्टूबर, 1926 को लोक सेवा आयोग की स्थापना की गई। उस समय एक अध्यक्ष और चार सदस्य थे। इससे पूर्व मैकाले प्रतिवेदन की सिफारिश पर योग्यता आधारित लोक सेवकों की भर्ती का कार्य लन्दन स्थित लोक सेवा आयोग (1654–55) किया करता था। भारत सरकार अधिनियम, 1919 के अन्तर्गत संघीय लोक सेवा आयोग का गठन किया गया। अब इसे संघ लोक सेवा आयोग कहते हैं। इस अधिनियम के अन्तर्गत, पहली बार प्रान्तीय स्तर पर लोक सेवा आयोगों के गठन का भी प्रावधान किया गया। इसका नाम संघ लोक सेवा आयोग 1950 के स्वतन्त्र भारत के संविधान के अनुच्छेद 313 (7) के अनुसार रखा गया। यह स्वतन्त्र संवैधानिक निकाय है। भारतीय संविधान में, अनुच्छेद 316 के अन्तर्गत केन्द्र तथा सभी राज्यों के लिए एक–एक लोक सेवा आयोग की स्थापना की गई है। संविधान में संघ लोक सेवा आयोग के प्रावधान के अतिरिक्त प्रत्येक राज्य में लोक सेवा आयोग तथा दो या दो से अधिक राज्यों के लिए संयुक्त लोक सेवा आयोग का प्रावधान भी है, बशर्ते कि तत्सम्बन्धी राज्यों के विधानमण्डल के सदन अथवा सदनों दारा इस आशय का प्रस्ताव स्वीकृत किया गया हो। इसी तरह किसी राज्य का राज्यपाल संघ के लोक सेवा आयोग से राज्य की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कार्य करने की प्रार्थना करे तो राष्ट्रपति के अनुमोदन पर संघ लोक सेवा आयोग राज्यों के लिए भी कार्य कर सकता है।

5.2 भर्ती अभिकरण की आवश्यकता

लोक सेवा आयोग की स्थापना से पूर्व लोक सेवा में भर्ती राजनीतिक आधार पर की जाती थी। इससे सत्ता परिवर्तन के साथ लोक सेवकों को भी बदल दिया जाता था। अत: उनकी सेवाओं को निरन्तर रखने के लिए लोक सेवा आयोग की स्थापना की आवश्यकता हुई। प्रो. पायली के अनुसार, "लोक सेवा आयोग का कार्य दो प्रकार से होता है–प्रथम धूर्तजनों को सेवा से बाहर रखना और दूसरे योग्य व्यक्तियों को लोक–सेवाओं में लाने का प्रयास करना।"

सवाल यह उठता है कि भर्ती के कार्य के लिए आयोग को ही क्यों नियुक्त किया गया है जबकि इस कार्य के लिए किसी मण्डल या किसी राजनीतिक संस्था को भी उत्तरदायी बनाया जा सकता है। शायद आयोग की स्थापना के पीछे संविधान निर्माताओं का यह विचार रहा होगा कि इस कार्य के लिए एक ऐसे निकाय की आवश्यकता है जो राजनीतिक एवं प्रशासनिक दबाव से पूर्णतया स्वतन्त्र होकर प्रभावी तौर पर कार्य कर सके। मण्डलों में प्राय: कार्यशक्ति का अभाव, निर्णय लेने में देरी आदि दोष पाये जाते हैं। इसी तरह किसी राजनीतिक संस्था को भी यह उत्तरदायित्व नहीं दिया जा सकता था क्योंकि ये संस्थाएँ निष्पक्ष व उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य नहीं कर सकती हैं। लोक सेवा आयोग भारत सरकार के समस्त मंत्रालयों व विभागों में गृहपालक के रूप में भर्ती संबंधी कार्य कर सकता है। अगर इस कार्यों के लिए किसी पृथक संस्था की स्थापना की जायेंगी तो अतिरिक्त आर्थिक भार के साथ–साथ उसके कार्य निष्पक्ष नहीं होंगे परन्तु लोक सेवा आयोग इस कार्य को निष्पक्षता के साथ सम्पन्न करेगा।

5.3 संघ लोक सेवा आयोग: संवैधानिक उपबन्ध

संविधान में इस आयोग की संरचना, इसके सदस्यों की नियुक्ति और पदच्युति, इसकी शक्तियों और कार्य तथा इसकी स्वतन्त्रता से संबंधित प्रावधानों का विस्तृत उल्लेख है। संविधान में लोक सेवा के बारे में विस्तार से उपबन्ध भाग 14 के अध्याय 2 में अनुच्छेद 315 से 323 में किया गया है।

संघ लोक सेवा आयोग, राज्य लोक सेवा आयोग और संयुक्त लोक सेवा आयोग के संदर्भ में संवैधानिक प्रावधान निम्न प्रकार हैं –

1. अनुच्छेद 315 – संघ व राज्यों के लिए लोक सेवा आयोग की स्थापना।
2. अनुच्छेद 318 – सदस्यों की नियुक्ति और कार्यकाल।
3. अनुच्छेद 317 – लोक सेवा आयोग के सदस्यों की पदच्युति व निलम्बन।
4. अनुच्छेद 318 – आयोग के कार्मिक और सदस्यों की सेवाशर्तो के विनियमित करने की शक्ति।
5. अनुच्छेद 319 – आयोग के सदस्यों के कार्यकाल की समाप्ति के पश्चात् पद पर नहीं बने रहने से संबंधित।
6. अनुच्छेद 320 – लोक सेवा आयोग के कार्य।
7. अनुच्छेद 321 – लोक सेवा आयोग के कार्यक्षेत्र में विस्तार देने की शक्ति।
8. अनुच्छेद 322 – लोक सेवा आयोगों से संबंधित व्यय।

9. अनुच्छेद 323 – लोक सेवा आयोगों का प्रतिवेदन।

5.4 संघ लोक सेवा आयोग का संगठन

संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष व अन्य सदस्यों की नियुक्ति अनुच्छेद 318 के अनुसार राष्ट्रपति दारा की जाती है। संविधान में आयोग के सदस्यों की संख्या का उल्लेख नहीं है, इसका निर्धारण राष्ट्रपति के विवेक पर छोड़ दिया गया है। आयोग में अध्यक्ष के अतिरिक्त सामान्यत: 9 से 11 सदस्य होते हैं। स्वतन्त्रता के समय एक अध्यक्ष तथा चार सदस्य आयोग में थे। सन् 1975 में आयोग में एक अध्यक्ष तथा 7 सदस्य स्वीकृत थे। वर्ष 1985 – 88 से आयोग में एक अध्यक्ष तथा 10 सदस्यों के पद स्वीकृत हैं। इसका कार्यालय नई दिल्ली में धौलपुर हाउस में स्थित है। जुलाई 2007 में आयोग में अध्यक्ष सहित 10 सदस्य पदस्थापित हैं।

संघ लोक सेवा आयोग के सदस्य

नाम	**आयोग में आने से पहले पद/स्थान**
चैयरमेन	
श्री सुबीर दत्त	सचिव, भारत सरकार, रक्षा मंत्रालय
सदस्य	
1. प्रो. डी.पी. अग्रवाल	निदेशक, भारतीय सूचना प्रौद्योगिकी एवं प्रबन्धन संस्था
2. वायुसेना प्रमुख सतीश गोविन्द ईनामदार (सेवानिवृत्त)	उप प्रमुख, भारतीय वायु सेना
3. मिस प्रवीण तल्हा	महानिदेशक, राष्ट्रीय आबकारी अकादमी (आबकारी व मादक द्रव्य निरोधक)
4. डा. भूरे लाल	सचिव, भारत सरकार, पी.जी व को. केबीनेट सचिवालय ।
5. श्री के. रॉय पॉल	सचिव, भारत सरकार, नागरिक उड्डयन (सदस्य)
6. प्रो. के. एस. चालम	प्रोफेसर (अर्थशास्त्र), आधा विश्वविद्यालय, वाईस चांसलर, द्रविडीयन विश्वविद्यालय ।
7. बालागुरूस्वामी	चेयरमेन प्रो. इ, ई.बी.जी. फाउंडेशन, हैदराबाद।
8. श्रीमती शशी उबान त्रिपाठी	
9. प्रो. पुरूषोत्तम अग्रवाल	

संविधान में यह व्यवस्था है कि स्थायी अध्यक्ष के अवकाश पर होने अथवा किसी कारणवश कार्य पर उपस्थित न होने की स्थिति में उस रिक्त स्थान पर आयोग के अन्य सदस्यों में से उस एक सदस्य को कार्यवाहक अध्यक्ष नियुक्त किया जा सकता है जिसे राष्ट्रपति नियुक्त करे। आयोग में सदस्यों की नियुक्ति के समय यह बात विशेष रूप से देखी

जाती है कि आयोग में आधे सदस्य ऐसे व्यक्ति होंगे जिन्होंने केन्द्र या राज्य सरकार के अधीन कम से कम 10 वर्ष कार्य किया हो। अम्बेडकर ने संविधान निर्माण के समय कहा था –"लोक सेवाओं में उम्मीदवारों की उपयुक्तता की जाँच के सम्बन्ध में उस व्यक्ति से अधिक श्रेष्ठ अन्य कोई नहीं हो सकता जो स्वयं लोक सेवाओं से सम्बद्ध रहा हो।" आयोग के अध्यक्ष और सदस्यों की सेवा संबंधी शर्ते संघ लोक सेवा आयोग (सदस्य) विनियमावली, 1969 द्वारा नियंत्रित होती हैं। आयोग के सदस्यों के वेतन भत्तों व अन्य सुविधाओं में कोई अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जा सकता।

5.5 कार्यकाल तथा पदच्युति

लोक सेवा आयोग के सदस्यों का कार्यकाल, पद भार ग्रहण करने की तारीख से 6 वर्ष तक अथवा 65 वर्ष की आयु प्राप्त करने तक, जो भी पहले हो, पद धारित करते हैं। संघीय लोक सेवा आयोग का कोई भी सदस्य अपने कार्यकाल से पूर्व भी राष्ट्रपति को सम्बोधित कर अपने हस्ताक्षर सहित लेख द्वारा पद त्याग कर सकता है। अनुच्छेद – 317 के अन्तर्गत सदस्य राष्ट्रपति दारा निर्देश दिये जाने के पश्चात किसी दुराचार में दोषी पाये जाने पर सर्वोच्च न्यायालय के दारा जाँच में दोषी पाये जाने पर राष्ट्रपति को प्रतिवेदन सौंपने पर हटाया जा सकता है। इस सम्बन्ध में आवश्यक प्रक्रिया का विवरण अनुच्छेद – 317 के खण्ड (1), (2), (3), (4) में दिया गया है। इनके अनुसार आयोग के सदस्यों को दुराचार के लिये राष्ट्रपति के आदेश द्वारा पदच्युत किया जा सकता है। संविधान के अनुसार किसी सदस्य के विरूद्ध दुराचार की प्रक्रिया निश्चित करने हेतु अनुच्छेद दारा निर्धारित प्रक्रियानुसार जाँच करने के बाद न्यायालय राष्ट्रपति के समक्ष अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करेगा और इस तरह जाँच के पूर्ण होने पर राष्ट्रपति उक्त सदस्यों को आयोग से निलम्बित कर सकता है।

इनके अतिरिक्त निम्नलिखित कारणों के उपस्थित होने पर राष्ट्रपति आयोग के किसी भी सदस्य को आदेश करा पद से हटा सकता है–

(1) यदि वह दिवालिया सिद्ध हो

(2) अपने पदावधि के दौरान अपने पद से भिन्न कोई अन्य सवैतनिक पर स्वीकार करता है।

(3) राष्ट्रपति के विचार से वह व्यक्ति किसी शारीरिक या मानसिक अस्वस्थता के कारण अपने पद पर कार्य करने के अयोग्य हो।

(4) यदि भारत सरकार अथवा राज्य सरकार द्वारा अथवा इनकी ओर से किये गए किसी ठेके अथवा करार के साथ उसका (एक निर्गमित कम्पनी के साधारण सदस्य को छोड़ कर) अन्य कोई सम्बन्ध हो अथवा उससे यह कोई लाभ प्राप्त करता हो।

लोक सेवा आयोग के सदस्यों की निष्पक्षता सुनिश्चित करने के लिए उनकी पुनर्नियुक्ति तथा भारत सरकार या राज्य सरकार के अधीन कोई भी लाभकारी पद धारण करने पर पाबंदी लगाई गई है। अनुच्छेद 316 (3) के अनुसार लोक सेवा आयोग के सदस्य को; उसकी पदावधि की समाप्ति पर, उस पद पर पुनर्नियुक्त नहीं किया जा सकता है। परंतु आयोग के सदस्य को अध्यक्ष बनाया जा सकता है।

5.6 वेतन एव सेवा दशाएं

संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्यों का वेतन और अन्य सेवा दशाएँ निर्धारित करने का अधिकार भारत के राष्ट्रपति को सौंपा गया है। आयोग के सदस्यों के वेतन, भत्ते एवं प्रशासनिक व्यय भारत सरकार की संचित निधि पर आधारित है। अर्थात आयोग के वेतन, भलों व प्रशासनिक व्यय पर संसद में वोटिंग नहीं होती है। आयोगों के अध्यक्ष व सदस्यों की सेवा दशाओं व वेतन, भत्तों में अलाभकारी परिवर्तन करना गैर संवैधानिक है। परंतु आर्थिक आपात स्थिति के दौरान, सर्वोच्च न्यायलय के न्यायाधीशों की भांति संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष व सदस्यों के वेतन–भत्तों में कटौती करना गैर संवैधानिक नहीं हैं।

5.7 आयोग के कार्यों की प्रकृति

आयोग भर्ती करने वाली जबकि सरकार नियुक्ति करने वाली प्राधिकारी संस्था है। आयोग और सरकार दोनों एक दूसरे पर निर्भर रहते हैं। आयोग सरकार के एक परामर्शदात्री निकाय के रूप में कार्य करता है। सरकार आयोग की सिफारिशों को निरस्त भी कर सकती है। सरकार द्वारा जो भी सिफारिशें स्वीकार नहीं की जाती हैं उनका रिकार्ड रखा जाता है और उन्हें वार्षिक प्रतिवेदन में भी सम्मिलित किया जाता है।

आयोग के समस्त कार्य तीन वर्गों में विभाजित किये जाते हैं–

(1) नियामिकयि

(2) कार्यकारी

(3) अर्धन्यायिक

(1) नियामिकयि कार्य – आयोग दारा सरकार को लोक सेवाओं में भर्ती, पदोन्नति, स्थानान्तरण अनुशासनात्मक कार्यवाही आदि के लिए सलाह दी जाती है।

(2) कार्यकारी कार्य – आयोग उच्च लोक सेवाओं में भर्ती हेतु परीक्षाओं का आयोजन करता है।

(3) अर्धन्यायिक कार्य – आयोग अर्धन्यायिक कार्यो के अन्तर्गत अनुशासनात्मक कार्यवाही, क्षतिपूर्ति के प्रकरणों में, पेंशन देने संबंधी दावों पर परामर्श देने के लिए कर्तव्यबद्ध हैं।

5.8 संघ लोक सेवा आयोग के कार्य

संविधान के अनुच्छेद 320 के अनुसार संघ लोक सेवा आयोग के निम्न कार्य हैं–

- दो या अधिक राज्यों के आग्रह पर किसी भी सेवा में संयुक्त भर्ती के लिए योजना बनाना व क्रियान्वित करना।
- अखिल भारतीय सेवाओं, केन्द्रीय सेवाओं और केन्द्रशासित राज्यों की लोक सेवाओं में नियुक्ति के लिए परीक्षाएँ आयोजित करना।
- राष्ट्रपति की स्वीकृति व राज्यपाल के अनुरोध पर राज्य की किसी एक अथवा सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करना।
- भर्ती के तरीकों तथा सिविल अथवा असैनिक सेवाओं तथा असैनिक पदों पर सीधी अथवा पदोन्नति द्वारा नियुक्ति करने में अपनाए जाने वाले सिद्धान्तों से सम्बन्धित सभी मामलों पर परामर्श देना।

- नियुक्ति, पदोन्नति तथा स्थानान्तरण आदि के लिए प्रत्याशियों की उपयुक्तता के सम्बन्ध में आवश्यक परामर्श देना।
- इस बात की व्यवस्था है कि संसद द्वारा अथवा राज्य विधान मण्डल द्वारा केवल सरकारी सेवाओं के ही सम्बन्ध में नहीं, बल्कि उन सेवाओं के सम्बन्ध में भी जो कि स्थानीय प्राधिकारियों, निगमों अथवा सार्वजनिक संस्थाओं के अधीन हो, आयोग के कार्यो का विस्तार किया जा सकेगा।
- भारत सरकार या राज्य सरकार की सेवा करने वाले व्यक्तियों पर प्रभाव डालने वाले समस्त अनुशासनिक विषयों पर परामर्श देना।
- सरकार की हैसियत से सेवा करते समय किसी व्यक्ति को हुई क्षति के बारे में मुआवजे की राशि के किसी दावे पर परामर्श देना।
- असाधारण पेंशन प्रदान करने, विधिक व्यय आदि की प्रतिपूर्ति से संबंधित विविध मामले।

5.9 विभिन्न सेवाओं तथा पदों पर भर्ती

1979 तक प्रशासनिक व उच्चतर सेवाओं में भर्ती की पद्धति

1979 से पूर्व आयोग द्वारा अभ्यर्थियों के चयन के लिए दो तरह की परीक्षा ली जाती थी – ऊँचे स्तर का लिखित परीक्षण दूसरा व्यक्तिगत साक्षात्कार। परीक्षा की इस प्रणाली की बहुत आलोचना की गयी। साक्षात्कार मण्डल द्वारा 15 या 20 मिनट तक विभिन्न विषयों पर वार्तालाप द्वारा क्या अभ्यर्थियों की आवश्यकता व विशेषताओं का अनुमान लगाना और उन गुणों को लेकर विभिन्न अभ्यर्थियों का तुलनात्मक मूल्यांकन करना सम्भव है। मौखिक परीक्षा के साथ–साथ लिखित परीक्षा की भी आलोचना की गयी। प्रथम आलोचना यह की गयी कि परीक्षाओं की पद्धति आधुनिक आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं करती। इस सम्बन्ध में ऐपल्बी ने ठीक ही कहा है कि "जिस मानदण्ड को लेकर लोक सेवा आयोग कर्मचारी वर्ग का चयन करता है वह उपयुक्त नहीं है, और परीक्षा लेने का ढंग तथा मूल्यांकन करने की तकनीक आधुनिक नहीं है। लोक प्रशासन के महत्वपूर्ण पहलुओं पर बहुत कम ध्यान दिया जाता है। सबसे अधिक ध्यान आत्मपरक एवं आकस्मिक विकास की क्षमता पर दिया जाता है।"

1978 तक प्रत्येक व्यक्ति को अखिल भारतीय सेवाओं की प्रतियोगी परीक्षा में बैठने की अनगिनत छूट थी तथा कोई छटंनी नहीं होती थी। छटंनी की कोई व्यवस्था न होने के कारण परीक्षार्थियों की संख्या सौ गुना बढ गई। प्रतिवर्ष परीक्षार्थियों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही थी। अत्यधिक संख्या में प्रत्याशियों के परीक्षा में बैठने से आयोग का कार्य अत्यधिक कठिन हो चुका था और योग्य प्रत्याशी भी चयनित नहीं हो पा रहे थे। इस विकट समस्या से उबरने के लिए और भर्ती के क्षेत्र में सुधार करने के लिए 1976 में डॉ. डी. एस कोठारी की अध्यक्षता में एक समिति गठित की गयी। इस समिति ने अपना प्रतिवेदन 1976 में प्रस्तुत किया। इसकी मुख्य सिफारिश थी कि अभ्यर्थियों को दो या तीन से ज्यादा अवसर नहीं दिये जाने चाहिए। प्रारम्भिक परीक्षा में पास अभ्यर्थियों के अंक मुख्य परीक्षा में नहीं जोड़े जाते हैं। यह परीक्षा मात्र मुख्य परीक्षा में पात्रता निर्धारित करने हेतु होती है। प्रारम्भिक परीक्षा दो विषयों में होती है तथा प्रत्येक विषय में एक प्रश्न–पत्र होता है। प्रथम प्रश्न–पत्र सामान्य

अध्ययन – सभी के लिए अनिवार्य, दूसरा वैकल्पिक है। प्रारम्भिक परीक्षा छंटनी की परीक्षा है। अत: जो परीक्षार्थी प्रारम्भिक परीक्षा में पास होता है वही मुख्य परीक्षा में बैठ सकता है। मुख्य परीक्षा में लिखित व –साक्षात्कार दोनों होते हैं। मुख्य परीक्षा में अनिवार्य प्रश्न–पत्रों में प्रथम प्रश्न पत्र किसी भारतीय भाषा का होता है। द्वितीय प्रश्न–पत्र अंग्रेजी तथा तृतीय व चतुर्थ प्रश्न–पत्र सामान्य अध्ययन के होते हैं। इसके अतिरिक्त दो वैकल्पिक विषय भी लेने पड़ते हैं प्रत्येक में दो विषय होते हैं। लिखित परीक्षा में सफल प्रत्याशियों का साक्षात्कार किया जाता है। भर्ती की यह नयी प्रणाली 1979 से लागू की गयी। यह लोक सेवा आयोग द्वारा आयोजित की जाती हैं। संघीय लोक सेवा आयोग ने लोक–सेवा परीक्षा के पुनरीक्षण करने के लिए अगस्त 1988 में सतीशचन्द्र की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया। समिति ने अगस्त 1989 को अपनी सिफारिशें प्रस्तुत की। आयोग ने समिति की सिफारिशों को 1993 की परीक्षा से लागू करने का निर्णय लिया। समिति की मुख्य सिफारिशें निम्न थी – लोक सेवा मुख्य परीक्षा 1993 में ३०० अंकों का निबन्ध प्रश्न पत्र आरम्भ किया जाए व साक्षात्कार परीक्षण 300 अंकों का होगा न कि 250 अंकों का।

5.9.1 निम्नलिखित तीन पद्धतियों में से एक द्वारा भर्ती की जाती है –

1. सीधी भर्ती
2. पदोन्नति व
3. स्थानान्तरण

सीधी भर्ती मोटे तौर पर निम्नलिखित दो पद्धतियों के अंतर्गत की जाती है –

(अ) मौखिक परीक्षा द्वारा

(ब) लिखित परीक्षा द्वारा

(स) लिखित और मौखिक दोनों परीक्षा द्वारा

(अ) लिखित परीक्षा द्वारा भर्ती –

संविधान के अंतर्गत, आयोग का मुख्य कार्य संघ की सिविल सेवाओं/पदों पर नियुक्ति के लिए परीक्षाएं आयोजित करना है। इसके अतिरिक्त, आयोग द्वारा रक्षा मंत्रालय के साथ आयोजन करके राष्ट्रीय रक्षा अकादमी, भारतीय सैन्य अकादमी, नौसेना अकादमी, वायु सेना अकादमी तथा अधिकारी प्रशिक्षण अकादमी के माध्यम से कतिपय रहा सेवाओं में प्रवेश के लिए प्रतियोगी परीक्षाएं भी आयोजित की जाती हैं। आयोग अखिल भारतीय स्तर पर प्रतिवर्ष सामान्यत: दर्जनों परीक्षाएं आयोजित करता है, इनमें 'सिविल सेवा, इंजीनियरिंग, चिकित्सा एवं वन सेवा आदि जैसे विभिन्न क्षेत्रों से जुड़ी सेवाओं/पदों पर भर्ती के लिए परीक्षाएं शामिल है।

फिलहाल, संघ लोक सेवा आयोग देश भर में स्थित 42 नियमित केन्द्रों पर परीक्षाएं आयोजित कर रहा है। संघ लोक सेवा आयोग ने श्री एस. एस. महदी की अध्यक्षता व श्री अरविन्द वर्मा की सदस्यता में एक उच्च स्तरीय समिति आयोग की कुछ सम्भव

परीक्षाओं/भर्ती परीक्षाओं को संयुक्त करने की जाँच करने के लिए गठित की है ताकि परीक्षाएं अभ्यर्थियों के सरल सुविधाजनक हो सके और आयोग का कार्यभार भी कम हो सके। समिति ने अपना प्रतिवेदन 31 जनवरी, 2006 को दिया है।

(ब) साक्षात्कार के माध्यम से भर्ती की प्रक्रिया –

यह भर्ती दो पद्धतियों द्वारा की जाती है –

(1) केवल साक्षात्कार द्वारा

(2) सीधी भर्ती व साक्षात्कार द्वारा

केवल साक्षात्कार द्वारा

तकनीकी सेवाओं व आवेदकों की संख्या कम होने पर यह पद्धति अपनायी जाती है।

पदोन्नति, प्रतिनियुक्ति, और स्थानांतरण में आयोग की भूमिका –

सरकार द्वारा आयोग के परामर्श से निर्णीत प्रक्रिया के अनुसार, आयोग के अध्यक्ष अथवा कोई सदस्य विभागीय पदोन्नति समिति की बैठकों की अध्यक्षता करते हैं जिनमें ग्रुप 'ख' से ग्रुप 'क' तथा ग्रुप 'क' में ही एक ग्रेड से दूसरे ग्रेड में पदोन्नतियों पर विचार किया जाता है। आयोग ने अपने 56वें वार्षिक प्रतिवेदन में केन्द्रीय सचिवालय के अधीन विभिन्न पदों पर पदोन्नति के लिए 6,046 अधिकारियों की सिफारिश की है।

अखिल भारतीय सेवाएं –

अखिल भारतीय सेवाएं अधिनियम, 1951 और इसके अंतर्गत बनाए गए नियम एवं विनियम के अनुसार भारतीय प्रशासनिक सेवा तथा भारतीय पुलिस सेवा परीक्षा में सीधी भर्ती का संबंध है। यह आयोग द्वारा आयोजित सिविल सेवा परीक्षा के माध्यम से की जाती है और भारतीय वन सेवा के लिए यह भर्ती भारतीय वन सेवा परीक्षा के माध्यम से की जाती है।

संगतनियमों एवं विनियमों में यह व्यवस्था है कि भा. प्र. से/भा. पु. से/भा. व. से. की रिक्तियों का 33% आयोग के परामर्श से राज्य की सेवा के अधिकारियों में से भरा जाना चाहिए। चयन समिति की अध्यक्षता आयोग के अध्यक्ष सदस्य करते हैं जिसमें केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकार के वरिष्ठ सरकारी प्रतिनिधि होते हैं।

5.10 आयोग की सलाह की परामर्शदात्री प्रकृति

भारत सरकार द्वारा एक परंपरा स्थापित की गई है कि आयोग को भेजे गए निम्नलिखित श्रेणी के मामलों में, कुछ विशेष परिस्थितियों को छोड़कर उनके द्वारा की गई अनुशषाएँ स्वीकार की जाएंगी।

(क) अर्द्ध–न्यायिक मामले

(ख) उम्मीदवारों की नियुक्ति हेतु चयन,

(ग) पदों के न्यूनतम वेतन की जगह उम्मीदवारों की उच्चतर प्रारंभिक वेतन पर नियुक्ति।

(घ) सरकारी सेवक द्वारा अपने दायित्वों के निर्वहन में किए गए कार्यो अथवा किए जाने वाले कार्यो के संबंध में उसके विरूद्ध की गई विधिक कार्यवाहियों के प्रतिवाद में उसके द्वारा किए गए व्यय के दावे।

आयोग के अधिकार : क्षेत्र के बाहर के पद –

निम्नलिखित पदों पर नियुक्तियों के सम्बन्ध में आयोग से कोई परामर्श नहीं लिया जाता–

1. न्यायाधिकरण अथवा आयोग की सदस्यता अथवा अध्यक्षता।
2. उच्च राजनयिक प्रकृति के पद।
3. तृतीय एवं चतुर्थ श्रेणी के अधिकांश कर्मचारी, जिनकी संख्या केन्द्र सरकार के कर्मचारियों की कुल संख्या की 98 प्रतिशत है, आयोग के कार्यक्षेत्र से बाहर है।

अधिकार क्षेत्र –

आयोग को अपने कार्य सम्पादित करने हेतु निम्नलिखित स्रोतों से कर्तव्य प्राप्त होते हैं—

(1) संविधान में वर्णित प्रावधानों से;

(2) संसद दारा निर्मित अधिनियमों से;

(3) कार्यपालिका द्वारा निर्मित नियमों, विनियमों तथा कार्यकारी आदेशों से और

(4) परम्परा के माध्यम से ।

अखिल भारतीय सेवाओं तथा केन्द्रीय लोक सेवाओं से सम्बन्धित मामलों के अतिरिक्त आयोग सैनिक अधिकारियों की भर्ती हेतु परीक्षा तथा उनकी पेंशन सम्बन्धित मामले भी देखता है। संविधान के अनुच्छेद – 321 के प्रावधानों के अन्तर्गत आयोग, दिल्ली नगर निगम, नई दिल्ली नगर पालिका परिषद, कर्मचारी राज्य बीमा निगम, कर्मचारी भविष्य निधि संगठन तथा नाविक भविष्य निधि संगठन के अधीन कुछ वर्गो के पदों पर नियुक्ति के सम्बन्धों में भी परामर्श प्रदान करता है। संघ लोक सेवा आयोग यह कार्य परम्परा से करता आ रहा।

5.11 सचिवालय

आयोग के कार्यो व दायित्वों को पूर्ण करने हेतु वर्तमान में राजपत्रित अधिकारी तथा अराजपत्रित अधिकारी कार्यरत हैं। संविधान के अनुच्छेद - 318 में आयोग के कर्मचारीवृंद की संख्या तथा उसकी सेवा शर्तों के सम्बद्ध में विनियम बनाने की शक्ति संविधान द्वारा राष्ट्रपति को दी गई है। आयोग के प्रशासनिक कार्य एक सचिव दारा सम्पन्न किये जाते हैं, सचिव आयोग के दारा नियुक्त किया जाता है। सचिव का वेतन व सेवा शर्ते एवं उसका स्तर भारत सरकार के अतिरिक्त सचिव के बराबर होती है। सचिव में आयोग की ज्यादातर प्रशासकीय / वित्तीय शक्तियाँ निहित होती हैं। सचिव के नीचे अतिरिक्त सचिव होता है, सचिव के पश्चात् प्रशासनिक शाखा का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व इसी अधिकारी का होता है। यह संघ लोक सेवा आयोग का वित्तीय सलाहकार होता है। इन अधिकारियों के नियंत्रण में कार्यपालक निदेशक (सूचना प्रणाली), निदेशक (परीक्षा सुधार), एक संयुक्त सचिव, उप सचिव तथा अनेक विशेषज्ञ अधिकारी एवं मंत्रालयिक वर्ग के कर्मचारी कार्यरत होते हैं। इन कार्मिकों के अतिरिक्त सैकड़ों अन्य कर्मचारी, कम्प्यूटर तथा अन्य प्रशासनिक शाखाओं में कार्यरत हैं। आयोग के बहुत से वरिष्ठ अधिकारी प्रतिनियुक्ति पर कार्यरत रहते हैं।

संघ लोक सेवा आयोग के सचिवालय की संरचना

सचिव
↓
अतिरिक्त सचिव
↓
संयुक्त सचिव
↓
उप सचिव
↓
अवर सचिव
↓
अनुभाग अधिकारी
↓
वरिष्ठ प्रभाग लिपिक
↓
निजी सचिव / व्यक्तिगत सहायक / आशु लिपिक
↓
कनिष्ठ लिपिक

इसके अतिरिक्त संघ लोक सेवा आयोग के कार्यालय में निम्न पद पदस्थापित होते हैं -

क्र.सं.	पदनाम	पदों की संख्या
1.	परीक्षा नियंत्रक	1
2.	कार्य विशेष पर अधिकारी (हिन्दी)	1
3.	वरिष्ठ अनुसंधान अधिकारी (हिन्दी)	3
4.	कनिष्ठ अनुसंधान अधिकारी (हिन्दी)	3
5.	अनुसंधान सहायक (हिन्दी)	12
6.	आशुलिपिक (हिन्दी)	1
7.	हिन्दी टंकक /आशुलिपिक	20

संघ लोक सेवा आयोग का कार्यालय अग्रलिखित शाखाओं में संगठित होता है –

1. परीक्षा शाखा (Examination Branch)
2. भर्ती शाखा (Recruitment Branch)
3. सेवा शाखा (Service Branch)
4. नियुक्ति शाखा (Appointment Branch)
5. गोपनीय (Confidential Branch)

5.12 वार्षिक प्रतिवेदन

संविधान के अनुच्छेद 323 के अंतर्गत आयोग का दायित्व है कि वह अपने द्वारा किए गए कार्यो की एक रिपोर्ट प्रत्येक वर्ष राष्ट्रपति को प्रस्तुत करे तथा ऐसी रिपोर्ट की प्राप्ति पर, राष्ट्रपति अस्वीकृत मामलों की एक प्रति अस्वीकृति का कारण स्पष्ट करने वाले ज्ञापन के साथ संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष विचारार्थ रखता है। इस प्रावधान से रिपोर्ट के सभी पहलुओं पर राजनीतिक स्तर पर बहस की जाती है और इस तरह सरकार चाहते हुये भी सही व महत्वपूर्ण सिफारिशों की अनदेखी नहीं कर सकती हैं। जिन सिफारिशों को सरकार नहीं मानती है उसे

जवाब के साथ संसद में भेजना होता है। यह एक रक्षोपाय है। वास्तव में वार्षिक प्रतिवेदन सरकार के मनमाने तरीके से कार्य करने पर अंकुश का कार्य करता है।

5.13 संघ व लोक सेवा आयोग को तटस्थ एवं निष्पक्ष बनाने वाले तत्व

1. संवैधानिक आधार
2. नियुक्ति एवं पदच्युति प्रक्रिया,
3. वेतन भत्ते व अन्य सुविधाओं में कार्यकाल में अलाभकारी परिवर्तन नहीं
4. पुनर्नियुक्ति पर प्रतिबंध
5. संसद आयोग के बजट पर विचार कर सकती है लेकिन वोट नहीं डालती
6. खर्चे का वहन भारत की संचित निधि से वहन
7. वार्षिक प्रतिवेदन का प्रावधान

5.14 संघ लोक सेवा आयोग का आलोचनात्मक मूल्यांकन

भारत में इंगलैण्ड तथा अमेरिका व अन्य देशों की तरह संघ लोक सेवा आयोग का सर्जन विधायिका द्वारा नहीं किया जाता है बल्कि यह एक संवैधानिक निकाय है। इसके अधिकार भी बहुत सीमित है। यदपि सैद्धांतिक रूप से विविध प्रकार की असैनिक सेवाओं के लिए भर्ती आयोग द्वारा की जाती है, किन्तु संविधान में यह भी प्रावधान किया गया है कि कार्यकारिणी कुछ पद इसके अधिकार क्षेत्र से बाहर निकाल सकती है। सरकार कुछ आवश्यक अस्थाई नियुक्तियाँ करते समय आयोग की पूर्ण रूप से अवहेलना करती है। कई बार आयोग द्वारा की गई भर्ती में अत्यधिक विलम्ब कर दिया जाता है, क्योंकि आयोग के पास कार्यभार की अधिकता रहती है।' आयोग में राजनीतिज्ञों की नियुक्ति की जाती है जिससे भर्ती संबंधी मामलों में राजनीतिक हस्तक्षेप को बढ़ावा मिलता है। वार्षिक प्रतिवेदन विधायिका में अत्यधिक विलम्ब से प्रस्तुत किया जाता है। आयोग के द्वारा 2005–6 में साक्षात्कार द्वारा 74 मामलों के संदर्भ में प्रत्यक्ष भर्ती करने की सिफारिश की गई थी परंतु मंत्रालयों/विभागों द्वारा एक वर्ष से भी ज्यादा विलम्ब किया गया है।

आयोग द्वारा सन् 1999 में सफल उम्मीदवारों की सूची जारी करने के बाद दुबारा उसका संशोधित रूप जारी किया गया। 1999 में शायद पहली बार ऐसा हुआ कि आयोग ने सफल उम्मीदवारों की सूची जारी करने के फौरन बाद उसका संशोधित रूप जारी किया गया। इस संशोधन का परिणाम यह हुआ कि एक उम्मीदवार का नाम वरीयता क्रम में 278 वे से उछलकर 26 वे स्थान पर पहुँच गया। इन घटनाओं की पुनरावृति पर अंकुश लगाने के लिए ऐसा भर्ती तंत्र चाहिए जो स्वतंत्र हो और योग्यता को तरजीह देता हो। वैसे आयोग की संविधान प्रदत स्वायत्ता पर सवाल खड़ा नहीं किया जा सकता परंतु इसका पतन प्रशासनिक सेवाओं के राजनीतिकरण में परिलक्षित होता है। आयोग में ज्यादातर नियुक्तियाँ संदेह से परे नहीं रही हैं। नरसिंह राव ने एक राजनैतिक नेता को आयोग के सदस्य के रूप में नियुक्त किया था जो कि अभूतपूर्व बात थी। लगभग सभी प्रधानमंत्रियों ने इसे सेवानिवृत नौकरशाहों की शरणस्थली के

रूप में इस्तेमाल किया है। आज जबकि नौकरशाही को सुधारने और व्यवस्थित करने की आवश्यकता पर आम सहमति है तो आयोग को भी मिसाल कायम करनी चाहिए।

प्रशासनिक सुधार आयोग ने सुझाव दिया है कि संघ लोक सेवा आयोग के लिए नियुक्तियाँ करते समय संघ सेवा आयोग के सभापति से अवश्य मन्त्रणा कर लेनी चाहिए, चाहे वह उत्तराधिकार से ही सम्बन्धित क्यों न हो। सरकार ने 2005 – 08 में 13 मामलों में आयोग द्वारा की गई सिफारिशों को स्वीकार नहीं किया जिसमें से 9 अनुशासनात्मक मामले व 4 मामले नियुक्ति से संबंधित थे। आयोग की सिफारिशों को स्वीकार न करने के मामलों में उतरोत्तर वृद्धि हो रही है। आयोग के विरूद्ध मुकदमों में वृद्धि हो रही है। आयोग के प्रतिवेदनों की जाँच करने से ज्ञात होता है कि प्रारम्भिक दौर में सरकार द्वारा आयोग की गिनी चुनी सिफारिश को नहीं माना जाता था। आगे चल कर ऐसे मामलों में वृद्धि हुई है। एक चिंता का विषय है कि ऐसे मामलों की संख्या में उतरोत्तर वृद्धि हो रही है जिनमें सरकार द्वारा आयोग की सिफारिश को स्वीकार नहीं किया गया है।

जब संघ लोक सेवा आयोग के सदस्यों का चयन करना हो तो दो तिहाई से कम सदस्य, राज्य लोक सेवा आयोग के सभापतियों तथा सदस्यों में से लेने चाहिए। संघ लोक सेवा आयोग द्वारा आयोजित की जाने वाली भारतीय प्रशासनिक सेवा सहित अन्य परीक्षाओं के पाठ्यक्रम की समीक्षा के लिए गठित समिति ने पाठ्यक्रम में व्यापक बदलाव के सुझाव दिए हैं। समिति की रिपोर्ट के अनुसार परीक्षा पाठ्यक्रम और कठिन होगा। समिति ने अपने प्रतिवेदन में बहुत ज्यादा ऐच्छिक विषयों को उचित नहीं बताया क्योंकि उन विषयों का सेवा में आने के बाद ज्यादा उपयोग नहीं रहता, इसी महत्वपूर्ण पक्ष को ध्यान में रखते हुए समिति ने सभी ऐच्छिक विषयों को शामिल करते हुए केवल तीन विषय तय करने और वे तीन विषय हर परीक्षार्थी के लिए अनिवार्य करने की सिफारिश की। पहले मौखिक परीक्षा के अंक 250 होते थे परंतु अब सतीशचन्द्र समिति की सिफारिश के पश्चात् अब साक्षात्कार परीक्षा 300 अंकों की कर दी गयी है। अत: मौखिक परीक्षा के अंक कम किये जायें।

राजस्थान राज्य लोक सेवा आयोग

5.15 ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

लोक सेवाओं में निष्पक्ष भर्ती के उद्देश्य के लिए पहले जोधपुर व उदयपुर में 1939 में, जयपुर में 1940 में और बीकानेर में 1946 में लोक सेवा आयोग चयन समिति की स्थापना की गई थी। भारतीय संविधान के अधीन वर्तमान में राजस्थान में राज्य की लोक सेवा में तटस्थ एवं निष्पक्ष भर्ती का कार्य राजस्थान लोक सेवा आयोग कर रहा है। इसका मुख्यालय अजमेर में स्थित है।

लोक सेवा आयोग की स्थापना से पूर्व लोक सेवाओं में भर्ती राजनीतिक आधार पर की जाती थी। राजनीतिज्ञों के सत्ता में जाने के साथ ही लोक सेवकों को भी बदल दिया जाता था। लोक सेवकों की सेवाओं को निरंतर रखने के लिए ही लोक सेवा आयोग की स्थापना की आवश्यकता महसूस हुई क्योंकि किसी भी देश के विकास के लिए तथा लोक सेवाओं को कार्यकुशल बनाने के लिए इन सेवाओं की स्थिरता व नियमितता अति आवश्यक है।

5.16 राजस्थान लोक सेवा आयोग की स्थापना

राजस्थान लोक सेवा आयोग की स्थापना 16 अगस्त, 1949 को राजस्थान के तत्कालीन राज प्रमुख द्वारा जारी एक विशेष अध्यादेश, यथा, राजस्थान लोक सेवा आयोग अध्यादेश, 1949 के अंतर्गत की गई थी। आयोग वैधानिक रूप से 20 अगस्त 1949 को अस्तित्व में आया। आरम्भ में आयोग के अध्यक्ष श्री एस. के. घोष व दो सदस्य थे । इसी अध्यादेश के अंतर्गत 28 जुलाई, 1950 को राज्य के लोक सेवा आयोग के प्रथम अध्यक्ष श्री एससी. त्रिपाठी तथा देवीशंकर तिवाड़ी एवं श्री एन. आर. चंडोरकर सदस्य बनाए गए। सन् 1968 तक सदस्यों की संख्या 3 थी फिर 1973 में 4 एवं 1981 में 5 कर दी गई। संविधान का अनुच्छेद 315 यह प्रावधान करता है कि संघ के लिए एक लोक सेवा आयोग होगा तथा प्रत्येक राज्य के लिए एक राज्य लोक सेवा आयोग का गठन किया जायेगा।

5.17 राजस्थान लोक सेवा आयोग का संगठन

5.17.1 सदस्यों की नियुक्ति

राजस्थान लोक सेवा आयोग के सदस्यों तथा अध्यक्ष की नियुक्ति राज्य के राज्यपाल द्वारा की जाती है। अनुच्छेद 316 (1) में प्रावधान है कि लोक सेवा में आयोग में आधे ऐसे सदस्यों को नियुक्त किया जाना चाहिए जिन्होंने केन्द्रीय या राज्य सरकार के अन्तर्गत 10 वर्ष तक कार्य किया हो। शेष आधे सदस्य किसी भी अन्य क्षेत्र से हो सकते हैं। सामान्यत: आयोग के वरिष्ठ सदस्य को ही आयोग का अध्यक्ष बनाया जाता है। आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्यों का स्तर सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश के समकक्ष होता है।

विनिमय – राजस्थान लोक सेवा आयोग की कार्यप्रणाली को नियमित करने हेतु राजप्रमुख द्वारा 1951 में संविधान के प्रावधानों के अन्तर्गत दो विनिमय लाये गये, ये निम्न हैं।

- राजस्थान लोक सेवा आयोग (सेवा शर्तें) विनिमय (1951)
- राजस्थान लोक सेवा आयोग (कार्यो का परिसीमन) विनिमय (1951)
- जुलाई, 2007 में आयोग में अध्यक्ष सहित निम्न दो सदस्य कार्यरत हैं -

क्र.स.	नाम	पद	योग्यता
1.	श्री सी. आर चौधरी	वर्तमान चैयरमेन (कार्यवाहक)	एम .ए. (भूगोल)
2.	श्री वीबी शर्मा.	सदस्य	बीकॉम, एलएलबी.

5.17.2 सदस्यों का कार्यकाल

आयोग के सदस्यों का कार्यकाल पद ग्रहण करने की तिथि से 6 वर्ष की सेवा अवधि अथवा 62 वर्ष की आयु प्राप्त करने तक (जो भी पहले हो) होता है। 1976 से पूर्व सदस्यों के लिए यह आयु सीमा 60 वर्ष थी।

राजस्थान लोक सेवा आयोग द्वारा जुलाई 2007 तक भरे जाने वाले आवेदन पत्रों के लिए ऊपरी आयु सीमा पार कर चुके अभ्यर्थियों को दो वर्ष की छूट देने का प्रस्ताव कार्मिक विभाग द्वारा रखा गया था परन्तु 10 जुलाई 2007 को विधि विभाग ने कार्मिक विभाग को ऊपरी आयु सीमा बढाने से इनकार कर दिया। कार्मिक विभाग ने लोक सेवा आयोग को 25 जून 2004 को जारी की गई अधिसूचना के अनुसार 01 जनवरी 1999 को ऊपरी आयु सीमा पार कर चुके अभ्यर्थियों को दो वर्ष की छूट नहीं दिये जाने का फैसला भेजा।

5.18 आयोग के सदस्यों का त्यागपत्र

आयोग के अध्यक्ष तथा सदस्य अपना त्यागपत्र राज्यपाल को सम्बोधित करते हुए पदत्याग कर सकते हैं।

5.19 सदस्यों की पदच्युति

राज्य के लोक सेवा आयोग को हटाने का अधिकार राष्ट्रपति को दिया गया है। आयोग के किसी सदस्य या अध्यक्ष को पद के दुरूपयोग या कदाचार के आरोप में लिप्त पाये जाते हैं तो राज्यपाल उन्हें निलम्बित कर सकता है पदमुक्त नहीं कर सकता। राष्ट्रपति ही आयोग के अध्यक्ष तथा सदस्यों को उच्चतम न्यायालय द्वारा दोषी पाये जाने, कोई वैतनिक नौकरी करने पर, किसी न्यायालय द्वारा दिवालिया घोषित किये जाने, या मानसिक एवं शारीरिक दृष्टि से कर्त्तव्य पालन के लिये अयोग्य पाये जाने पर पदमुक्त कर सकता हैं। संविधान की धारा 319 (डी) के प्रावधानों के तहत केन्द्र व राज्य के लोक सेवा आयोग के सदस्य राज्य या केन्द्र सरकार के तहत किसी भी लाभ के पद पर नहीं बैठ सकते किन्तु श्री के. एल. कमल आयोग के सदस्य रहने के पश्चात् राजस्थान विश्वविद्यालय के कुलपति बने थे। इसी तरह श्रीमती कांता कथूरईया को भी आयोग के सदस्य रहने के पश्चात् राजस्थान राज्य महिला आयोग के अध्यक्ष पद पर नियुक्त किया गया।

5.20 सदस्यों के वेतन एवं भत्ते

आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्यों के वेतन एवं भत्ते तथा आयोग का सम्पूर्ण व्यय राज्य की संचित निधि पर आधारित होता हैं। सेवा शर्तें – राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष व सदस्यों की सेवा शर्तें राज्यपाल द्वारा विनियोजित की जाती है। नियुक्ति के पश्चात राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्यों की सेवा शर्तों में किसी प्रकार का कोई अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जा सकता है।

5.21 आयोग का सचिवालय

राजस्थान लोक सेवा आयोग का कार्यालय अजमेर मे स्थित है। आयोग के नए भवन तथा मोनोग्राम का उद्घाटन राजस्थान के पूर्व राज्यपाल श्री अंशुमान सिंह ने 21 अक्टूबर, 2000 को किया था। आयोग के अध्यक्ष तथा सदस्य इसके सर्वोच्च अधिकारी होते हैं। जो कि विभिन्न मामलों में अपना निर्णय देते हैं, किन्तु प्रशासनिक कार्यो के संचालन के लिए एक व्यापक तंत्र की आवश्यकता होती हैं। इसलिये आयोग के कार्यालय में एक सचिव (आई. ए.

एस.) होता है जो कि आयोग के समस्त प्रशासकीय व वित्तिय कार्यो को संभालता है। उपसचिव, सचिव की प्रत्येक कार्य में सहायता करता है। इनके अतिरिक्त कार्यालय में सहायक सचिव, अनुभाग अधिकारी, पुस्तकालय अधिकारी तथा अन्य मंत्रालयिक कार्मिक कार्यरत हैं।

आयोग में निम्नांकित संभल या शाखाएं कार्यरत हैं–

(1) प्रशासनिक संभाग
(2) परीक्षा संभाग
(3) भर्ती संभाग
(4) अनुसंधान तथा कम्प्यूटर संभाग
(5) लेखा संभाग
(6) सामान्य संभाग
(7) गोपनीय संभाग
(8) विधि संभाग
(9) स्लेट परीक्षण संभाग
(10) पुस्तकालय संभाग
(11) पत्र प्राप्ति एवं प्रेषण संभाग।

स्थापना के समय आयोग में 04 कर्मचारी कार्यरत थे किन्तु राज्य प्रशासन के वृहत कार्यो व दायित्वों को पूर्ण करने हेतु कर्मचारियों की संख्या में भी वृद्धि हुई है। आयोग के सचिवालय में लगभग 270 कर्मचारी कार्यरत हैं आयोग के कार्यो को सफलतापूर्वक सम्पादित करने हेतु आयोग को आन्तरिक ढाँचे को कई संभागों तथा शाखाओं में विभक्त किया हुआ है। जिसका विवरण संगठनात्मक ढाँचे के चित्र में दिया गया है।

राजस्थान लोक सेवा आयोग : संगठनात्मक ढाँचा

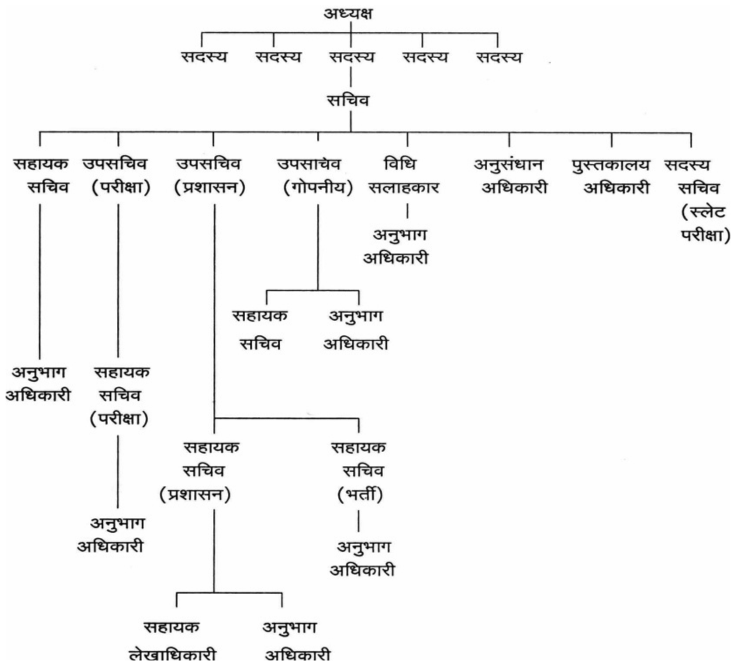

5.22 राजस्थान लोक सेवा आयोग के कार्य

संविधान की धारा 320 के अनुसार राज्य लोक सेवा आयोग को निम्नलिखित कार्य प्रमुख रूप से सौंपे गये हैं–

1. राज्य सेवाओं में नियुक्ति के लिए प्रतियोगी परीक्षाएँ आयोजित करना एवं प्रत्याशियों का चयन करना व भर्ती की रीतियों से सम्बद्ध सभी विषयों पर परामर्श देना।
2. असैनिक राजपत्रित सेवाओं और अन्य असैनिक पदों के लिए भर्ती के तरीकों के सम्बन्ध में राज्य सरकार को परामर्श देना।
3. अभ्यर्थियों की पदोन्नति, स्थानान्तरण और उनकी उपयुक्तता के बारे में अनुसरण किये जाने वाले सिद्धान्तों पर परामर्श देना।
4. भारत सरकार या राज्य सरकार की सेवा करने वाले कर्मचारियों के विरूद्ध की गई अनुशासनात्मक कार्यवाहियों के विषय में परामर्श देना।
5. राज्य कर्मचारियों के विरूद्ध की गई गैर–कानूनी कार्यवाही में खर्च के दावे के सम्बन्ध में परामर्श देना।
6. राज्यपाल द्वारा दिये गये किसी भी अन्य विषय पर परामर्श देना।
7. आयोग का सबसे महत्वपूर्ण कार्य भर्ती से सम्बन्धित है आयोग राज्य सरकार के आग्रह पर विभिन्न विभागों के कार्मिकों की भर्ती करता है तथापि कुछ विभागों तथा पदों पर भर्ती का कार्य आयोग नहीं बल्कि सम्बन्धित विभाग स्वयं या कोई समिति करती है।

विभिन्न पदों की प्रकृति, योग्यताओं तथा प्रत्याशियों की संख्या के अनुसार लिखित परीक्षा, केवल अथवा लिखित परीक्षा एवं साक्षात्कार पद्धति संयुक्त रूप से प्रयुक्त की जा सकती है। राजस्थान आयोग नियमित रूप से आवश्यकतानुसार निम्नांकित प्रतियोगी परीक्षाएँ आयोजित करता है -

1. राजस्थान राज्य एवं अधीनस्थ सेवाएँ संयुक्त प्रतियोगी परीक्षा।
2. उप निरीक्षक आरक्षी संयुक्त प्रतियोगी परीक्षा
3. राजस्थान न्यायिक सेवा प्रतियोगी परीक्षा
4. जिला शिक्षा अधिकारी प्रतियोगी परीक्षा
5. सहायक जेलर प्रतियोगी परीक्षा
6. मोटर वाहन उप–निरीक्षक प्रतियोगी परीक्षा
7. विधि सहायक प्रतियोगी परीक्षा
8. श्रम कल्याण अधिकारी एवं श्रम निरीक्षक प्रतियोगी परीक्षा
9. शीघ्र लिपिक प्रतियोगी परीक्षा (उच्च न्यायालय)
10. तहसील राजस्व लेखाकार प्रतियोगी परीक्षा
11. कनिष्ठ लिपिक संयुक्त प्रतियोगी परीक्षा
12. राजस्थान वन सेवा (सहायक ग्रेड वन संरक्षक एवं रेंजर्स ग्रेड–प्रथम) संयुक्त प्रतियोगी परीक्षा

13. राजस्थान अधीनस्थ सेवाएँ परीक्षा

14. विश्वविद्यालय तथा महाविद्यालय शिक्षकों के व्याख्याता पद हेतु पात्रता (स्लेट) परीक्षा।

आयोग द्वारा कुछ पद केवल साक्षात्कार द्वारा भी भरे जाते हैं। इनमें चिकित्सा एवं स्वास्थ्य विभाग तथा आरक्षी विधि विज्ञान प्रयोगशाला के चिकित्सक, महाविद्यालयी एवं माध्यमिक शिक्षा के व्याख्याता तथा अन्य विभागों जैसे प्राविधिक शिक्षा, अभियोजन, भूजल, गृह रक्षा एवं नागरिक सुरक्षा, राजस्थान राज्य अभिलेखागार तथा समाज कल्याण इत्यादि के पद सम्मिलित हैं। प्रतियोगी परीक्षाओं के पाठ्यक्रम में आयोग, परिशोधन तथा संशोधन करता है। 2001 से राजस्थान प्रशासनिक सेवाओं में कृषि अभियांत्रिक, खनिज एवं कम्प्यूटर अभियांत्रिकी, गृह विज्ञान, डेयरी विज्ञान को आर. ए. एस. परीक्षा में अन्य विषयों की तरह ऐच्छिक विषय का दर्जा दिया गया है। अनियमित नियुक्तियाँ व सेवा नियमों की जाँच भी आयोग के दायित्वों के अन्तर्गत आती है।

आयोग राज्य सरकार की विभिन्न विभागीय पदोन्नति समितियों (डी. पी. सी.) में अध्यक्षता तथा सम्बन्धित पदोन्नति सूची को अन्तिम रूप से स्वीकृति प्रदान करता है। डी. पी. सी. के द्वारा 1995–96 में 410, 1996–97 में 357, 1997–98 में 378, 1998–99 में 300 व 1999–2000 में 203 पदोन्नतियाँ की गई।

आयोग द्वारा अनुशासनात्मक मामलों की अपीलों पर भी परामर्श दिया जाता है। 1995–96 में 75, 1996–97 में 57, 1997–98 में 57, 1998–99 में 101 व 1999–2000 में 92 अनुशासनात्मक मामलों पर परामर्श दिया गया है। इन कार्यो के अतिरिक्त लोक सेवा आयोग स्वयं अपनी पहल पर अनुच्छेद 320 में निर्दिष्ट कार्यो के अलावा किसी अन्य कार्य का सम्पादन तक नहीं कर सकता, जब तक कि अनुच्छेद 321 की प्रक्रिया द्वारा उसे अतिरिक्त कार्यो का दायित्व न सौंपे जाये। संविधान और विधान मण्डल ऐसे दो स्त्रोत हैं जिनसे राज्य लोक सेवा आयोग को अतिरिक्त शक्तियाँ प्राप्त होती हैं।

5.23 आयोग का वार्षिक प्रतिवेदन

यद्यपि लोक सेवा आयोग की भूमिका एक परामर्शदात्री निकाय की है परंतु अधिकांश मामलों में सरकार आयोग के परामर्श को स्वीकार कर लेती है। कुछ मामलों में आयोग के परामर्श को अस्वीकार भी कर देती है। आयोग द्वारा प्रतिवर्ष तैयार की जाने वाली रिपोर्ट में समस्त मामलों का स्पष्टीकरण व पूर्ण विवरण दिया जाता है। संघ लोक सेवा आयोग का प्रतिवेदन राष्ट्रपति के माध्यम से संसद में तथा राज्य लोक सेवा आयोग का प्रतिवेदन राज्यपाल के माध्यम से राज्य विधान मंडल में प्रस्तुत की जाती है। (अनुच्छेद 323 (2))।

आयोग के क्षेत्राधिकार के बाहर के मामले –

निम्नलिखित मामलों में आयोग का परामर्श नहीं लिया जाता है, जैसे –

(1) नई लोक सेवाओं तथा पदों का सृजन,

(2) सेवाओं तथा पदों का वर्गीकरण

(3) लोक सेवाओं की प्रथम नियुक्ति के समय वेतन का निर्धारण,

(4) सेवाओं तथा पदों की सामान्य पद्धति,

(5) वेतन निर्धारण,

(6) लोक सेवकों के प्रशिक्षण, परिवीक्षा तथा स्थायीकरण की शर्ते इत्यादि।

5.24 राज्य लोक सेवा आयोग की कार्यप्रणाली का आलोचनात्मक मूल्यांकन

भारत में कई राज्यों में लोक सेवा आयोगों को उतना महत्व नहीं दिया गया है जितना अपेक्षित है। कई राज्य सरकारें आयोग के अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले पदों को छिनने लगी है। कई बार यह भी देखने में आया है कि नियुक्ति सम्बन्धी मामलों में सरकार आयोग की सलाह को ठुकरा देती है। वास्तव में यह एक आपत्तिजनक परम्परा है।

पिछले कई वर्षो में राजस्थान राज्य लोक सेवा आयोग अपनी कछुआ चाल, लेटलतीफी और मनमानी प्रकृति से पहचाना जाता था। राजस्थान लोक सेवा आयोग परीक्षा में वर्ष 1999 में 2. 25 लाख से भी अधिक प्रत्याशी प्रारम्भिक परीक्षा में सम्मिलित हुए थे जबकि इससे पूर्व वर्ष (1998) में यही आँकड़ा 125 लाख प्रत्याशियों का था। वर्ष 2007 की प्रारंभिक परीक्षा के लिए 3 लाख 6 हजार 200 अभ्यार्थियों ने आवेदन किया है। यह परीक्षा 25 नवम्बर 2007 को होगी। परीक्षाएँ आयोजित करवाने में देर की जाती थी फिर परिणाम देर से घोषित किये जाते थे, परिणामों में विलम्ब के बाद भी विसंगतियों की भरमार होती थी। आयोग द्वारा मेरिट की न्यूनतम अंक सीमा के बारे में भी कुछ नहीं बताया जाता। सन 2003 में राजस्थान लोक सेवा आयोग द्वारा परीक्षा करीब चार वर्ष पश्चात् आयोजित की गई। भारत के अधिकांश लोक सेवा आयोगों के पास कार्य का भारी दबाव रहता है। आयोग के सदस्यों पर राजनीतिक व जातीय दबाव भी काफी देखने को मिलता है। महत्वपूर्ण परीक्षाओं के प्रश्नपत्र भी परीक्षा पूर्व लीक होते रहते हैं जिससे अभ्यर्थियों को काफी मुश्किल होती है। आर. ए. एस. परीक्षा में कई बार ज्यादातर प्रश्न किसी गाइड अथवा पासबुक विशेष से लिये जाते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ प्रश्न पत्रों में कुछ सवालों के या तो एक से ज्यादा उत्तर सही होते हैं या एक भी उत्तर सही नहीं होता इससे प्रश्नपत्र तैयार करने के तरीकों की विश्वसनीयता संदिग्ध कही जा सकती है।

आयोग की प्रतियोगी परीक्षाओं में नये विषय सम्मिलित करने के लिए सरकार से अनुमति लेनी पड़ती है। आयोग के कार्यो व क्षेत्राधिकार में विधायिका को संशोधन करने का अधिकार है। हाल के वर्षो में राज्य आयोग द्वारा किया गया कार्य गुणवत्ता में भी घटिया है। इसका मूलभूत कारण यह प्रतीत होता है कि कुछ राज्यों की यह प्रवृति होती है जिसके अनुसार वे राज्य आयोगों में निम्न स्तर के सदस्यों की राजनीतिक कारणों से भर्ती कर देते हैं। इसलिये आवश्यकता है राज्य लोक सेवा आयोगों के विषय में एक राष्ट्रीय नीति का विकास किया जाए जिससे यह सुनिश्चित किया जाए कि वे स्वतंत्रता तथा उच्च दर्जे की निपुणता से कार्य करेंगे।

प्रशासनिक सेवाओं में ज्यादातर शहरी क्षेत्र के युवा चयनित होते हैं जबकि ग्रामीण क्षेत्र के युवा उनसे ज्यादा योग्य होते हैं परंतु हिन्दी अंग्रेजी का ज्ञान कम होने के कारण उनका चयन नहीं हो पाता है। साक्षात्कार के समय भी आत्मविश्वास की कमी के कारण वे अपना प्रभाव साक्षात्कार समिति पर नहीं छोड़ पाते। इस समस्या से निजात पाने के लिए 16 दिसम्बर

1988 को राज्य सभा एवं विपक्षी पक्ष के अनेक सदस्यों ने यह माँग की कि परीक्षाओं का माध्यम हिन्दी अथवा क्षैत्रीय भाषाएँ रखा जाए। वर्तमान में अभ्यर्थियों को क्षेत्रिय भाषा में परीक्षा देने का अधिकार दे दिया गया है।

आयोग अभ्यार्थियों की मानक उत्तर तालिकाओं को समाचार पत्रों में प्रकाशित नहीं कर सकता है ना ही मैरिट की न्यूनतम अंक सीमा के बारे में ही कुछ बताता है। अत: आयोग को मैरिट की न्यूनतम अंक सीमा विषयवार समाचार पत्रों में प्रकाशित करनी चाहिए ताकि आयोग का कार्य पारदर्शी बन सके। राजस्थान राज्य प्रशासनिक तथा अधीनस्थ सेवाओं की प्रतियोगी परीक्षाओं में राज्य में जयपुर, सीकर, अलवर, झुंझुनूं तथा सवाई माधोपुर जिलों के ही प्रत्याशी अधिक सफल रहे हैं। डूंगरपुर, बांसवाड़ा, उदयपुर, राजसमन्द, भीलवाड़ा, वारां, चितौड़गढ और सिराही जिलों में तो अनुसूचित जनजाति के लोग बड़ी संख्या में होने के बावजूद उनका प्रतिनिधित्व नगण्य रहता है। अभी तक अनुसूचित जाति व जनजाति के तीन चौथाई से अधिक अभ्यर्थी जयपुर, दीसा, करौली व सवाईमाधोपुर के थे।

आयोग के प्रत्येक कार्य को न्यायालय में भी चुनौती दी जा सकती है। राजस्थान लोक सेवा आयोग के विरूद्ध विगत कुछ वर्षो में कई याचिकाएँ दायर की गई हैं। इससे आयोग तथा सरकार को न्यायालय के निर्देशों को मानने के लिए विवश होना पड़ता है। कई परीक्षार्थियों को यह पता ही नहीं होता कि बहु विकल्पात्मक प्रश्न पत्रों में प्रश्न की जाँच के समय ऋणात्मक अंकन प्रणाली अपनाई जाती है। कई बार परीक्षार्थी को यह भी पता नहीं होता कि मूल्यांकन कार्य में ऋणात्मक अंकन होगा या नहीं? इस प्रकार के विवाद, आयोग के कार्यो के प्रति अविश्वास उत्पन्न करते हैं।

कई बार आयोग में सरकार की निश्चिन्तता के अभाव में पूर्णकालिक अध्यक्ष की नियुक्ति नहीं हो पाती। जुलाई 2006 में आयोग के पूर्णकालिक अध्यक्ष जी. एस टाक से करीब तीन महिने के लिए श्री हरनारायण मीणा ने कार्यवाहक अध्यक्ष के रूप में कार्य भार ग्रहण किया। सितम्बर 2006 में श्री हरनारायण मीणा का पदभार आयोग के वरिष्ठ सदस्य सी. आर. चौधरी ने कार्यवाहक अध्यक्ष के रूप में ग्रहण किया। राजस्थान लोक सेवा आयोग के इतिहास में शायद यह पहली बार देखा गया है कि सितम्बर 2008 से आयोग का कार्यभार मात्र दो सदस्यों के कंधों पर ही है। दो सदस्यों से गणपूर्ति पूर्ण नहीं हो सकती थी। दुर्भाग्य से आयोग को रोजमर्रा के कार्यो के संदर्भ में निर्णय लेने में भी बाधा आती है, क्योंकि आयोग में गणपूर्ति करने के लिए अध्यक्ष सहित तीन सदस्यों का होना अनिवार्य है।

प्रशासनिक सुधार आयोग के अध्ययन दल ने जो, कि संघ लोक सेवा आयोग के विषय में अध्ययन कर रहा था, इस बात की आवश्यकता पर बल दिया कि राज्य लोक सेवा आयोग के सचिवालयों के अधिकारियों में वृद्धि कर दी जानी चाहिए। राज्य लोक सेवा आयोग के अधिकारियों को कुछ समय के लिए संघ लोक सेवा आयोग के सचिवालय के साथ जोड़ दिया जाए ताकि वे अपने आप भर्ती की परिष्कृत विधियों से परिचित हो सके।

इसमें कोई शक नहीं है कि धीरे– धीरे आयोग अपनी छवि व स्थिति सुधारने का प्रयास कर रहा है। राजस्थान प्रशासनिक सेवा में महिलाओं ने अपनी प्रतिभा का कमाल दिखाना शुरू कर दिया है। 1991 से 2004 तक राजस्थान प्रशासनिक सेवा में जहाँ 33 बेटियों को

कामयाबी मिली, वहीं 2005 और 2006 में ही 30 स्थान महिलाओं ने हासिल किये हैं। राजस्थान प्रशासनिक सेवा के 800 अफसरों में हालांकि महिला अधिकारियों की संख्या अब भी 100 से कम है, लेकिन अगर ऐसे ही महिलाएं आगे बढती रहीं तो अगले दशक में उनकी संख्या तिगुनी हो जायेगी, जो कि सकारात्मक परिवर्तन का सूचक है।

5.25 सारांश

संघ व राज्य लोक सेवा आयोग एक स्वयत्तशासी संवैधानिक संस्थायें हैं जिनकी अपनी एक पृथक स्थिति है। अत: इन्हें अपनी गरिमा एवं स्थिति का ध्यान रखते हुए ही कोई भी निर्णय लेना चाहिए। अपनी विश्वसनीयता को बनाए रखने के लिए परीक्षाओं का निश्चित एवं नियोजित कलेण्डर बनाना चाहिए, क्योंकि बेरोजगार व्यक्तियों के लिए ये संस्थाएं एक आशा की किरण हैं। यदि इन पर से उनका विश्वास उठ जाएगा तो उनकी स्थिति क्या होगी इसकी कल्पना करना ही त्रासदपूर्ण है।

5.26 शब्दावली

पदच्युति (Removal)	–	पद से हटाना
दुराचार (Mis conduct)	–	असंगत व्यवहार
दिवालिया (Insolvent)	–	निर्धन
निष्पक्ष (Unbiased)	–	तटस्थ, अपक्षपाती (समान व्यवहार)
उपयुक्तता (Suitability)	–	उद्देश्य या परिस्थिति के अनुरूप
प्रतिपूर्ति (Compensation)	–	पारितोषिक, प्रतिफल
अनुशंषाए (Recommendation)	–	सिफारिशें करना
निर्वहन (Discharge)	–	मुक्त करना
विधिक (Legal)	–	कानूनी
सर्जन (Creation)	–	निर्माण की हुई वस्तु
तरजीह (Preference)	–	अधिक आदर देना

5.27 अभ्यास प्रश्न

1. संघ लोक सेवा आयोग के संगठन व कार्यप्रणाली को समझाइये।
2. संघ लोक सेवा आयोग के कार्यो का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।
3. राजस्थान राज्य लोक सेवा आयोग के संगठन व कार्यो का विस्तृत वर्णन कीजिए।
4. संघ व राज्य लोक सेवा आयोगों की कार्यप्रणाली का वर्णन कीजिए

5.28 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. एम. वी. पायली, भारत का संविधान, एशिया पब्लिशिंग हाऊस, 1978
2. अवस्थी एवं अवस्थी, भारतीय प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2007
3. प्रमोद कुमार मिश्र, लोक प्रशासन के नूतन सन्दर्भ, पार्क प्रकाशन इलाहबाद, 2007

4. वार्षिक प्रतिवेदन. राजस्थान राज्य लोक सेवा आयोग
5. एम. ए. मुत्तलिब, दी यूनियन पब्लिक सर्विस कमिशन, आई. आई. जे. पी. ए. , नई दिल्ली, 1967

इकाई–6

लोकसेवकों के राजनीतिक अधिकार – संघ बनाने का अधिकार, राजनीति में भाग लेने व वोट देने का अधिकार, न्यायालयों एवं अन्य न्यायाधिकरणों में जाने का अधिकार

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 लोकसेवकों के राजनीतिक अधिकार

6.2.1 लोकसेवकों को संघ बनाने का अधिकार

6.2.2 लोकसेवकों को वोट देने का अधिकार

6.2.3 लोकसेवकों को राजनीति में भाग लेने का अधिकार

6.3 लोकसेवकों के न्यायालयों एवं अन्य न्यायाधिकरणों में जाने का अधिकार

6.3.1 प्रशासकीय न्यायाधिकरण की अवधारणा एवं विकास

6.3.2 प्रशासकीय न्यायाधिकरणों के प्रकार

6.3.3 प्रशासकीय अधिनिर्णय के मुख्य प्रकार

6.3.4 प्रशासकीय न्यायाधिकरणों के गुण

6.4 सारांश

6.5 अभ्यास

6.6 संदर्भ ग्रन्थ सूची

6.0 उद्देश्य

इस इकाई के उद्देश्य है –

1. लोकसेवकों के राजनीतिक अधिकारों पर एक समीक्षात्मक विमर्श प्रस्तुत करना।
2. लोकसेवकों को संघ बनाने के अधिकारों के बारे में स्पष्ट बोध कराना।
3. राजनीति में भाग लेने के लोकसेवकों के अधिकार की स्पष्ट मीमांसीय जानकारी प्रदान करना।
4. लोकसेवकों के वोट देने के अधिकार को स्पष्ट करना।
5. लोकसेवकों के न्यायालयों एवं न्यायाधिकरणों में जाने का अधिकार का मूल्यांकन परक विवेचन प्रस्तुत करना
6. प्रशासकीय न्यायाधिकरणों की अवधारणा को प्रकट करना।
7. प्रशासकीय न्यायाधिकरणों के प्रकार एवं महत्व पर प्रकाश डालना।
8. प्रशासकीय अधिनिर्णय के मुख्य प्रकार स्पष्ट करना।

6.1 प्रस्तावना

लोकसेवक या नागरिक सेवक शासन व्यवस्था एवं सरकार के संवाहक होते है। अप्रत्यक्ष रूप से संविधान प्रदत्त प्रत्यायोजित शक्तियों के माध्यम से ये वास्तविक सत्ताधारी होते है। आज के इस प्रजातांत्रिक, कल्याणकारी एवं वैज्ञानिक युग में लोकसेवकों की भूमिका व्यापक और महत्वपूर्ण होती जा रही है साथ ही जनापेक्षाएँ भी बढ़ रही है। राजनीति और राजनीतिज्ञों के साथ ही मिलकर इन्हें सत्ता की गाड़ी को आगे सुसंचालित करना होता है। राजनीतिज्ञ एवं लोकसेवक दोनों सामाजिक व्यक्ति है तथा भावनात्मक रिश्तों की डोर से बंधे होने से मनोवैज्ञानिक प्रभाव इनके व्यक्तित्व एवं कार्यशैली को प्रभावित करता है।

ऐसे समय में लोकसेवकों को किसी जाति, सम्प्रदाय या राजनीतिक दल विशेष की विचारधारा एवं भाई– भतीजावाद से परे रहकर निष्पक्ष, तटस्थ एवं प्रतिबद्धता के साथ अपनी भूमिका का निर्वहन करने की अपेक्षा की गई है। इसके लिए उससे यह भी अपेक्षा की गई है कि किसी राजनीतिक दल के साथ अपना विशिष्ट सक्रिय सहयोग न रखें। किसी तरह का ऐसा संगठन न बनाये न ही ऐसे संघ या संगठन में शामिल हो जो राजनीतिक प्रकृति का हो।

लोकसेवकों को विश्व के अलग– अलग देशों में अलग–अलग स्तरों पर भिन्न–भिन्न राजनीतिक अधिकार प्रदत्त किये है। अधिकार औद्योगिक एवं गैर औद्योगिक कार्मिकों को अलग–अलग दिये गये है। इंग्लैण्ड, अमेरिका तथा फ्रांस में लोकसेवकों के राजनीतिक अधिकार भिन्न–भिन्न है।

भारत में लोकसेवकों को राजनीतिक अधिकारों के तहत वोट देने एवं गैर राजनीतिक कार्मिक संघ बनाने के अधिकार संवैधानिक प्रावधानों के तहत दिये गये है। हड़ताल का अधिकार भी प्रदत्त किया गया है। साथ ही यदि लोकसेवक सक्रिय राजनीति में आना चाहता है तो अपनी सेवा से त्यागपत्र देकर निर्वाचन में भी भाग ले सकता है। लोकसेवकों के ये राजनीतिक अधिकार सर्वदा चिन्तन का विषय रहे है।

समाज व राजनीति के मध्य विचरण करते समय कानून की सीमा में बंधे ये लोकसेवक जाने– अनजाने में प्रताड़ित व पीड़ित किये जाते रहे है। नीतियों एवं कानूनों के क्रियान्वयनकर्ता की भूमिका अत्यन्त जटिल एवं विवादास्पद व संदेहास्पद बना दी जाती है। ऐसे में उसे कहीं व किस प्रकार न्याय सता है। उसकी जानकारी एवं चर्चा अत्यावश्यक है।

लोकसेवकों को प्रताड़ना एवं पीड़ा से मुक्ति के लिए कानूनी सहायता हेतु प्रशासकीय न्यायाधिकरणों एवं न्यायालय में जाने का अधिकार प्रदत्त किया गया है। जहाँ वह अपने साथ होने वाले किसी भी असमान व अपमानजनक व्यवहार के लिए न्याय की गुहार कर सकता है। प्रथमत: वह प्रशासकीय न्यायाधिकरणों में अपने लिए न्यायावेदन करता है। वहाँ न्याय न मिलने पर या न्यायाधिकरणों के न्याय से संतुष्ट न होने पर वह न्यायपालिका में अपनी गुहार लगा सकता है।

अत: प्रशासकीय न्यायाधिकरणों एवं न्यायालयों में जाने के लोक सेवकों के अधिकारों एव प्रशासकीय न्यायाधिकरणों (प्रशासकीय न्यायालयों) की अवधारणा कार्यकरण, प्रकार एवं महत्ता के बारे में विस्तार से चर्चा प्रासंगिक, अपरिहार्य एवं महत्वपूर्ण है।

6.2 लोक सेवकों के राजनीतिक अधिकार

राज्य कर्मचारियों द्वारा सम्पन्न किये जाने वाले महत्वपूर्ण कार्यो की पृष्ठभूमि में यह उपयुक्त माना जाता है कि उनकी कतिपय नागरिक स्वतन्त्रताओं पर सीमाएँ लगाई जाएँ। इस दृष्टि से भाषण या लेखन द्वारा उनकी अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता, संघ बनाने की स्वतन्त्रता और सक्रिय राजनीति में भाग लेने की स्वतन्त्रता आदि पर सीमाएँ और प्रतिबन्ध लगाए जाते है। राज्य कर्मचारियों को यथासम्भव राजनीतिक दृष्टि से तटस्थ बनाए रखने की व्यवस्था की जाती है। इसी दृष्टिकोण से प्रभावित होकर उन्हें विभिन्न राजनीतिक अधिकार सौंपे जाते है। भारत में सभी प्रकार के राज्य कर्मचारियों पर केन्द्रीय अथवा राज्य व्यवस्थापिका के लिए प्रत्याशी बनने पर प्रतिबन्ध लगाया गया है. । कोई राज्य कर्मचारी अपने पद से त्यागपत्र दिये बिना किसी चुनाव के लिए खड़ा नहीं हो सकता है। जहाँ तक अन्य राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेने का प्रश्न है, यहाँ प्रत्येक कर्मचारी से आशा की जाती है कि वह राजनीतिक मामलों में मौन रहेगा तथा किसी पक्ष के साथ अपनी संलग्नता प्रदर्शित नहीं करेगा। वह राजनीतिक दल का सदस्य नहीं हो सकता है उसकी कार्यवाहियों में भाग नहीं ले सकता, दल में कोई पद ग्रहण नहीं कर सकता, आम सभा से भाषण नहीं दे सकता, लेख नहीं लिख सकता, चुनाव में किसी प्रत्याशी के पक्ष या विपक्ष में प्रचार नहीं कर सकता। जहाँ तक स्थानीय संस्थाओं के कार्यो में भाग लेने का प्रश्न है, इस सम्बन्ध में 1919 में नगरपालिका एवं स्थानीय स्वायत्त शासन कानून पारित हुआ है। तदनुसार राज्य कर्मचारियों को इन संस्थाओं की सदस्यता से वंचित कर दिया गया है।

संयुक्त राज्य अमेरिका में संघ सरकार के अधिकारियों एवं कर्मचारियों को जनसेवक माना जाता है इसलिए उनके आचरण का स्तर अधिक प्रतिबन्धित और गैर–सरकारी रोजगार की अपेक्षा उच्चतर होना चाहिए। यद्यपि सरकार को कर्मचारियों के निजी जीवन में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए किन्तु उनसे यह आशा अवश्य करती है कि वे ईमानदार, विश्वसनीय, भरोसेमन्द, सच्चरित्र और प्रतिष्ठापूर्ण बने रहेंगे। इसी लक्ष्य की दृष्टि से राज्य–कर्मचारियों की राजनीतिक गतिविधियों को प्रतिबंधित और नियमित किया जाता है। इस दृष्टि से कुछ उल्लेखनीय बातें निम्नलिखित है –

1. **राजनीतिक प्रतिबन्ध –** नागरिक सेवकों की राजनीतिक गतिविधियों पर रोक लगाई जाती है। राज्य कर्मचारियों की राजनीतिक गतिविधियों पर लगाए गए प्रतिबन्धों को मुख्यत: चार वर्गो के अन्तर्गत रखा जा सकता है –
   (अ) कोई भी राज्य कर्मचारी दलीय प्रचार के लिए तथा दल के कोष के लिए न स्वयं योगदान करेगा और न अन्य को ऐसा करने के लिए दबाव डालेगा।
   (ब) राज्य कर्मचारी चुनाव प्रचार में भाग न लें।
   (स) राज्य कर्मचारी राजनीतिक पद के लिए प्रत्याशी नहीं बन सकता।
   (द) राज्य कर्मचारी कोई राजनीतिक संगठन नहीं बना सकते और न ही ऐसे संगठन की सदस्यता बढ़ाने का प्रयास कर सकते है।

2. **संस्थाओं में गतिविधियाँ –** नागरिक सेवकों को गैर–राजनीतिक प्रकृति की धार्मिक, सामाजिक एंव आर्थिक संस्थाओं में भाग लेने के लिए विशेष रूप से प्रोत्साहित किया जाता है। सरकार को यह जाँच करने का पूरा अधिकार है कि नागरिक सेवक जिन संस्थाओं में सक्रिय है वे प्रतिबन्धित या राज्य विरोधी तो नहीं है।

6.2.1 लोक सेवकों को संघ बनाने का अधिकार

कर्मचारी एवं नियुक्तिकर्ता के हित परस्पर भिन्न होते है और जैसा कि कार्ल मार्क्स द्वारा प्रतिपादित किया था, ये हित एक दम विरोधी होते है। प्रशासन को निष्पक्ष रखने के लिए सरकारी सेवकों को यह अधिकार नहीं दिया जाता है कि वे कोई राजनैतिक दल बना सके, किसी राजनीतिक दल में सक्रिय रूप से भाग ले सकें। यद्यपि प्रशासन की ईमानदारी, एकरूपता, न्यायप्रियता आदि की दृष्टि से यह सीमा आवश्यक है, फिर भी एक नागरिक के रूप में उनकी स्वतन्त्रताओं के विरूद्ध है। प्रजातंत्रात्मक राज्यों में सरकारी कर्मचारियों की भाषण–अभिव्यक्ति एवं संस्था बनाने की स्वतन्त्रता को व्यावहारिक बनाने के लिए उन्हें यह अधिकार दिया जाता है कि व्यावसायिक, सांस्कृतिक, आर्थिक आदि लक्ष्यों के लिए संघ तथा संस्थाएँ बना सके। ये संस्थाएँ सामान्यत: व्यापारिक संघ व्यवस्थापना के अन्तर्गत आती है। ज्यों ही किसी विभाग अथवा सेवा में संघ की रचना की जाती है त्यों ही उनका लक्ष्य एवं संविधान विभागाध्यक्ष के सम्मुख प्रस्तुत करना होता है। प्रत्येक संघ का सरकारी मान्यता प्राप्त होना जरूरी है। भारत वर्ष में प्राय: सभी सरकारी विभागों एवं निगमों के कर्मचारी को संघ बनाने का अधिकार दिया गया है, किन्तु पुलिस सेवा के कर्मचारियों को नियमानुसार संघ बनाने के लिए अनुमति नहीं दी गयी। कुछ दिन पूर्व इसमें पुलिस कर्मचारियों ने जो मांग प्रस्तुत की तथा संसद के सम्मुख प्रदर्शन किये, उत्तरप्रदेश में छात्रों के साथ मिलकर सरकार का विरोध किया उनको सरकार ने देश की शान्ति एवं व्यवस्था के नाम पर अस्वीकार कर दिया।

विश्व के प्रमुख प्रजातान्त्रिक देशों अमेरिका तथा ब्रिटेन की भाँति भारतवर्ष में भी नागरिक संघ बनाने एवं किसी भी संघ का सदस्य बनाने का अधिकार प्राप्त है, किन्तु वह संघ राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त होना चाहिए। यदि किसी संघ ने अस्तित्व में आने के छ: माह के भीतर राज्य की मान्यता प्राप्त नहीं की है या राज्य ने मान्यता देने से मना कर दिया है अथवा उसकी मान्यता वापस ले ली गयी है, तो नागरिक सेवक उसका सदस्य नहीं बन सकता। इसके अतिरिक्त इस सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण बात यह है कि भारत सरकार केवल उसी संघ को मान्यता प्रदान करती है जो निम्न शर्तों को पूरा करे–संघ को कार्यपालिका उसके सदस्यों में से नियुक्त की जाए। संघ केवल कुछ सदस्यों के लाभार्थ संचालित नहीं किया जायेगा। सरकारी कर्मचारियों के अतिरिक्त अन्य किसी क्रांति का संघ से कोई सम्बन्ध नहीं रहना चाहिए। संघ के पास कोई राजनैतिक विधि नहीं होनी चाहिए। उसके द्वारा किसी राजनीतिक अथवा राजनैतिक दलों के विचारों का प्रचार नहीं किया जायेगा।

इसके अतिरिक्त भारत सरकार अधिकारियों द्वारा प्रसारण वार्ताओं का विरोध नहीं करती है परन्तु यह मानती है – (अ) सरकारी सेवकों द्वारा प्रसारण वार्ताएँ सरकारी सेवकों के आचरण नियमों के अर्थ में सार्वजनिक कथन हैं और (ब) वार्ताएँ समाचार–पत्र लेखों से भिन्न

प्रकार की होती है। भारत सरकार ने यह वचन दिया है कि भारतीय प्रशासन सेवा राजनीतिक प्रचार के उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं की जायेगी। द्वितीय वेतन आयोग के अनुसार, "सार्वजनिक सेवकों को राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेने के लिए आवश्यक दशाओं में एक यह आश्वासन है कि अपने वैयक्तिक राजनीतिक सम्बन्धों और गतिविधियों को अपने सार्वजनिक कर्त्तव्यों से पूर्णतया पृथक रहेंगे और यह भी कि जनता मानेगी कि ऐसा पृथक्करण हो सकता है और तथ्यगत हो रहा है। आयोग के मत में भारत में ऐसी दशाएँ अस्तित्व में नहीं है अत: जो बात इंग्लैण्ड जैसे एकरस (सामंजस्यपूर्ण) समुदाय में स्वस्थ और व्यावहारिक हो सकती है जहाँ कि लोकतंत्रात्मक सरकार की बहुत पुरानी परम्पराएँ है, वे भारत में स्वस्थ और व्यावहारिक हो ऐसा होना आवश्यक नहीं। " अतएव आयोग इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि राजनीतिक अधिकारियों पर वर्तमान प्रतिबन्धों में परिवर्तन या ढील जनता के हित में नहीं होगा अथवा स्वयं कर्मचारियों के हित में भी नहीं होगी, तो भी गैर–औद्योगिक नागरिकों सेवकों को स्थानीय निकायों के निर्वाचन में भाग लेने की आज्ञा देकर इसका प्रारम्भ किया जा सकता है।

श्री विश्वनाथ सिंह लिखते है, "भारत में नागरिक सेवकों के राजनीतिक अधिकारों पर प्रतिबन्ध तुलनात्मक में बहुत कठोर तथा समय से बहुत पीछे प्रतीत होते है। सार्वजनिक सेवा के क्षेत्र तथा पैमाने में शीघ्रता से वृद्धि के साथ भारत में लाखों व्यक्तियों को नागरिक सेवाओं में नियुक्त करना होता है। आज सरकारी सेवक जनता के सर्वाधिक वेतन तथा स्पष्ट बोलने वाले वर्गो में से एक है।" उन सबको सार्वजनिक प्रश्नों के वाद– विवाद में भाग लेने से वांछित करने का अर्थ कुल जनसंख्या के एक बड़े भाग को राजनीतिक अधिकारों के प्रयोग से वांछित करना होगा, जबकि ऐसे प्रश्नों का सभी पर गहरा प्रभाव पड़ता है। यह ठीक है कि देश को यह विश्वास होना चाहिए कि चाहे कोई भी दल सत्तारूढ़ हो सार्वजनिक सेवाएँ वर्तमान सरकार की वफादारी और लगन से सेवा करेगी।

डगलस हूटन लिखता है – कर्मचारी वर्ग के संघों ने नागरिक सेवा को अधिक लोकप्रिय बनाने अथवा इसे अधिक अच्छी तरह समझे जाने योग्य बनाने के लिए पर्याप्त कार्य नहीं किया है। कर्मचारी वर्ग के आन्दोलन को कम स्टाफ की मदद से अधिक अच्छा तथा अधिक कार्य करने संबंधी अभियान को प्रारम्भ करना चाहिए। नागरिक सेवा के दीर्घकालीन हित इस बात में है कि वह कुशलता का उच्चतर स्तर प्राप्त करने की प्रबल धारणा बनाये और संगठन को अधिक गुंथा हुआ बनाये। नागरिक सेवा राजनीतिक दृष्टि से मन्द है। प्राय: प्रत्येक देश में कर्मचारियों के संगठनों की संख्या बढ़ रही है। जैसे–जैसे सरकार के कार्यो में वृद्धि हो रही है। आज कर्मचारियों के संगठन मालिकों (सरकार) में संतोषजनक सम्बन्ध स्थापित करने तथा सरकार व कर्मचारियों वर्ग अर्थात् दोनों पक्षों के बीच अच्छे सम्बन्ध बनाये रखने में महत्वपूर्ण भाग ले सकते है।

कार्मिक संघ की अवधारणा

संगठन में कर्मचारी एवं नियोक्ता के हित परस्पर भिन्न एवं एक–दूसरे के विरोधी होते है। संगठन चाहे व्यक्तिगत हो अथवा सार्वजनिक दोनों में नियुक्तिकर्ता मुख्यत: यह चाहता है कि वह कर्मचारियों के वेतन, मनोरंजन कल्याण, निवास–स्थान, बालकों की शिक्षा आदि की

बातों पर कम से कम व्यय करके अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करे। संगठन के प्रत्येक सुधार और प्रक्रिया से सम्बन्धित प्रत्येक नवीन प्रयोग एवं कार्य संचालन के नियम के पीछे मूल उद्देश्य यह रहता है कि संगठन से अधिक लाभ किस तरह प्राप्त किए जा सके और प्रशासन को कैसे सफल बनाया जा सके। नियुक्तिकर्ता अपने इन लक्ष्यों को प्राप्त करने में प्रभावशाली और अधिक सफल होता है क्योंकि उसके हाथ में आर्थिक शक्तियाँ होती है तथा वह (लोक प्रशासन में तो) राजनीतिक शक्ति का भी प्रयोग कर सकता है। दूसरी और कर्मचारी अपेक्षाकृत कमजोर स्थिति में होता है। यद्यपि उसके हित और लक्ष्य नियुक्तिकर्ता से भिन्न एवं विपरित होते है तथापि वह इन्हें प्राप्त करने के लिए उतनी शक्ति एवं बाध्यता का प्रयोग करने में असमर्थ रहता है। कर्मचारी वर्ग का मुख्य आकर्षण वेतन भी मात्रा और सेवा से मिलने वाला सामाजिक सम्मान, आत्म–गौरव एवं अन्य कल्याणकारी उत्पादन है। वह इन सबको अधिक से अधिक मात्रा में प्राप्त करना चाहता है। नियुक्तिकर्ता और कर्मचारी वर्ग के इन विरोधी हितों के बीच सन्तुलन स्थापित करने के लिए कर्मचारियों को संघ और संस्थानों का निर्माण करना होता है।

संगठन के मूल में प्राय: अधिक वेतन प्राप्ति की इच्छा निहित रहती है। पिगोर्स तथा मेयर्स के अनुसार, "एक कर्मचारी संघ का सदस्य इसलिए बनना चाहता है क्योंकि वह समझदार है कि उसकी महत्वाकांक्षाओं को अकेले चलने की अपेक्षा संघ का सदस्य बनने से अधिक संतोष मिलेगा। संगठन के प्रबन्धकों को संघ की रचना को अपनी असफलता एवं अप्रतिष्ठा का प्रतीक नहीं समझना चाहिए। बल्कि उसे रचनात्मक सम्बन्धों के विकास के लिए पहल करना चाहिए। वर्तमान समय में कर्मचारियों के बढ़ते हुए संघों एवं संख्याओं की पृष्ठभूमि में यह अक्ल आवश्यक हो गया है कि सेवीवर्ग अधिकारी इनको सहन करे। सकारात्मक रूप से प्रोत्साहन प्रदान करे तथा सरकार एवं सेवकों के बीच अच्छे सम्बन्ध कायम करने के लिए उनका सदुपयोग करें। कर्मचारियों के संघ एवं संस्थाओं यद्यपि सेवीवर्ग प्रबन्ध का एक आवश्यक अंग है किन्तु इनका कर्मचारियों के दृष्टिकोण एवं मनोबल पर गहरा प्रभाव पड़ता है जिसका उल्लंघन कर कोई भी योग्य सेवीवर्ग अधिकारी संगठन को क्षति पहुँचाने की गलती नहीं करना चाहेगा।"

कर्मचारी संघ का उद्देश्य

सरकारी कर्मचारी संघों का निर्माण तथा उनकी सदस्यता ग्रहण करते समय एक उपयोगितावादी एवं व्यावहारिक दृष्टिकोण अपना कर चलते है। स्टाल का कहना है कि "कभी–कभी कर्मचारी संघ में इसलिए सम्मिलित होते है कि अनुभव करते है कि असूचित प्रबन्ध के विरूद्ध उनके हितों की रक्षा के लिए इस प्रकार की सुरक्षा अत्यन्त आवश्यक है।" सरकारी संगठनों के कर्मचारी जब संघों एवं संस्थाओं के सदस्य बनते है तो इनके दारा उनके कई लक्ष्य पूरे हो जाते है। एक संघ द्वारा उसके सदस्यों को जो सेवाएँ प्रदान की जाती है, वे मुख्यत: निम्न है –

1. संघों एवं संस्थाओं के माध्यम से सरकारी कर्मचारी व्यवस्थापिका शाखा के सम्मुख अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत कर सकते है।
2. संघ अथवा संस्था एक प्रकार से कर्मचारी का ही व्यापक है। संघ जो कुछ करता है अथवा करने की चेष्टा करता है, वह सब कर्मचारी से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है।

3. जब कभी सेवीवर्ग प्रबन्ध को एक विषय–विशेष पर कर्मचारियों का मत जानने की आवश्यकता होती है तो वह संघ या संस्थाओं के सम्पर्क स्थापित करके ऐसा करता है।
4. स्वेच्छा पर आधारित कर्मचारी–संस्थाओं द्वारा समस्याओं की सर्वाधिक एवं सामाजिक महत्वाकांक्षाओं के पनपने के अवसर प्रदान किए जाते है।

कर्मचारी संघों के प्रकार

कर्मचारी संस्थाओं को मुख्य रूप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम प्रकार की संस्थाएँ वे है जिनके सदस्य किसी के विशेषज्ञ होते है। इन संस्थाओं को व्यावसायिक संस्थाएँ कहा जाता है। दूसरी प्रकार की संस्थाओं को व्यापार–संघ कहा जाता है जो सामान्य व्यापार–संघ आन्दोलन का एक भाग है जिनका जन्म 19 वीं शताब्दी के समाजवाद तथा औद्योगिक क्रांति के प्रारम्भ में हु आ था। ये दोनों प्रकार की संस्थाएँ उद्देश्य एवं लक्ष्यों की दृष्टि से कुछ भिन्नता रखती हैं और इनके द्वारा सेवीवर्ग प्रशासन में भिन्न प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न की जाती है।

कर्मचारी संघों की गतिविधियाँ

विभिन्न कर्मचारी संघ अपनी सार्थकता और उपयोगिता साबित करने के लिए अनेक प्रकार की गतिविधियाँ सम्पन्न करते है, वे मुख्यत: निम्नलिखित है –

1. सामाजिक और मनोरंजक गतिविधियाँ
2. सेवा और सहानुभूतिपूर्ण गतिविधियाँ
3. शैक्षणिक पय प्रचारात्मक गतिविधियाँ
4. प्रशासनिक अधिकारियों के सम्मुख कर्मचारियों का प्रतिनिधित्व
5. व्यवस्थापिका के सम्मुख कर्मचारियों का प्रतिनिधित्व
6. सामयिक रूप से समाचार–पत्र या पत्रिकाएँ प्रकाशित करना जिनमें विभिन्न प्रकार की सूचनाएँ कर्मचारियों के लिए रूचिपूर्ण सरकारी विकासों का उल्लेख, कार्य की प्रणालियाँ और तरीकों से सम्बन्धित सूचनात्मक लेख संगठन की स्थिति और सदस्यों से संगठनों की भावना के विकास के लिए सम्पादकीय लेख, सदस्यों से सम्बन्धित गतिविधियाँ और सामाजिक समाचार आदि।

6.2.2 लोकसेवकों को वोट देने का अधिकार

जनतन्त्रात्मक सरकार की सफलता के लिए नागरिक सेवकों की राजनीतिक तटस्थता आवश्यक शर्तो में से एक समझी जाती है। इसका अर्थ यह है कि नागरिक सेवकों को राजनीतिक कार्यो में भाग नहीं लेना चाहिए। अधिकतर देशों में लोक सेवाओं की राजनीतिक तटस्थता को सुनिश्चित रखने के लिए नागरिक सेवकों को देश के राजनीतिक जीवन में प्रत्यक्ष रूप से भाग लेने के लिए मनाही होती है। गत 30 – 40 वर्षो से राज्य का कार्य विकास तथा लोक कल्याण के प्रवर्तक के रूप में परिवर्तित हो गया है। राज्य स्वयं एक सबसे बड़ा स्वामी हो गया है। इस परिवर्तन संदर्भ में नागरिक सेवकों के राजनीतिक अधिकारों पर विमर्श आवश्यक है।

नागरिक सेवकों को अपने पद के कारण शक्तियाँ तथा उत्तरदायित्व प्रदत्त है, परन्तु एक पदाधिकारी होने के अतिरिक्त वह एक नागरिक भी है। उसे नागरिक तथा राजनीतिक अधिकार मिलने चाहिए, जिससे वह समाज को अपना योगदान देने में समर्थ हो सके, परन्तु साथ ही वह सरलतापूर्वक तथा पूर्ण रूप से एक नागरिक ही नहीं होता हैं। एक ओर जनतन्त्रात्मक राज्य में सभी नागरिकों को राज्यों के कार्यो में मत देना उचित है, दूसरी ओर नागरिक सेवा में लोकहित राजनीतिक तटस्थता की माँग करता है और उसे पक्षपात हीनता में विश्वास सरकारी ढाँचे का एक आवश्यक अंग है। राजनीतिक अधिकारों को मोटे रूप में दो समूहों में विभक्त किया जा सकता है– (1) मत प्रयोग तथा सामान्य राजनीतिक कार्यो के अधिकार। (2) विधायिका तथा नगरपालिका निकायों के लिए अभ्यर्थी होने का अधिकार। औद्योगिक तथा गैर औद्योगिक नागरिक सेवकों में भी अन्तर किया जा सकता है। सरल शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि गैर सार्वजनिक लाभ की सेवाओं में लगे हुए औद्योगिक नागरिक सेवक राजनीतिक अधिकारों के उपभोग में साधारण नागरिकों के समान है। वे केवल सरकारी गोपनीयता को भंग नहीं कर सकते है।

नागरिक सेवकों के द्वारा राजनीतिक अधिकारों के उपभोग पर कुछ सीमाएँ रखी जाती है। सरकारी सेवकों की राजनीतिक स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्धों का विचार विभिन्न आधारों पर उचित ठहराया जाता है। सं. रा, अमेरिका में यह विचार है कि नागरिक सेवकों को इस आधार पर राजनीति में भाग लेने की आज्ञा नहीं होनी चाहिए राजनीति को प्रशासन से पृथक रखना चाहिए। इंगलैण्ड में प्रचलित विचारधारा यह है कि फूँक लोक सेवक जनता के उद्देश्यों की पूर्ति में लगे रहते है, अत: उन्हें तटस्थ रहना चाहिए। कुछ दूसरे देशों में सामान्य विचार यह है कि नागरिक सेवकों को उन सभी राजनीतिक अधिकारों के उपभोग का अधिकार होना चाहिए, जिनका सामान्य रूप से सभी नागरिक उपभोग करते है और केवल कुछ विशेष दशाओं में ही उचित प्रतिबन्ध लगाये जा सकते है।

राज्य कर्मचारियों के राजनीतिक अधिकार सम्बन्धी प्रश्न दो विरोधी मूल्यों से प्रभावित है। एक ओर प्रजातांत्रिक सिद्धान्त लोकसेवकों को समान राजनीतिक अधिकार और स्वतन्त्रताएँ प्रदान करने का पक्ष लेते है, दूसरी ओर लोकसेवाओं में कार्यकुशलता की माँग इनके राजनीतिक आचरण पर कुछ प्रतिबन्ध लगाने का समर्थन करती है। एक ओर प्रशासनिक दक्षता यह माँग करती है कि राज्य कर्मचारी निर्दलीय और निरपेक्ष रह कर कार्य करें किन्तु दूसरी ओर उनकी बढ़ती हुई संख्या के कारण यह नीति समाज के एक बहुत बड़े अंश को राजनीतिक दृष्टि से पंगु तथा निष्क्रिय बना देगी। इस प्रकार यह एक गम्भीर समस्या है कि राज्य कर्मचारियों की व्यावहारिक निष्पक्षता बनाए रखते हुए उन्हें किस प्रकार सामान्य नागरिक अधिकार सौंपे जाएं। भारत में राज्य कर्मचारियों के लिए सरकार की नीति एवं कार्यक्रम की आलोचना करना तथा राजनीति में भाग लेना मना है। उन्हें खुलेआम भाषण देने और समाचार–पत्रों में वक्तव्य देने या पुस्तकें लिखने आदि से प्रतिबन्धित किया गया हैं। कर्मचारियों को राजनीतिक आन्दोलन में भाग लेने से रोका गया है। यहाँ तक कि कर्मचारी के आश्रित भी ऐसी कार्यवाहियों में भाग नहीं ले सकते। संसद तथा विधानसभा के लिए निर्वाचनों में राज्य कर्मचारी किसी पक्ष का समर्थन या विरोध नहीं कर सकता और न स्वयं चुनाव लड़ सकता है। उसे केवल मतदान का अधिकार

है। जहाँ तक नागरिक स्वतन्त्रताओं को सीमित करने का प्रश्न है उसकी दृष्टि से राज्य कर्मचारी भाषण, लेखन आदि अपने विचार प्रकट नहीं कर सकते, जब तक कि सरकार से पूर्व स्वीकृति प्राप्त न कर ली जाए।

राज्य कर्मचारियों के राजनीतिक अधिकारों में मोटे रूप से दो बातें शामिल है – मताधिकार एवं राजनीतिक गतिविधियाँ और विधानसभाओं के लिए प्रत्याशी बनना। आजकल प्राय: किसी भी देश में लोकसेवकों को मताधिकार से वंचित नहीं किया जाता। इसके विपरित आम जनता से पहले ही उन्हें यह अधिकार प्राप्त हो गया था क्योंकि प्रजातान्त्रिक शक्ति प्राप्ति के संघर्ष में विभिन्न राजनीतिक दलों ने यह आशा की कि लोकसेवकों का मत उन्हें प्राप्त हो सकेगा। इस प्रकार लोकसेवकों के मताधिकार को राजनीतिज्ञों द्वारा अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए प्रोत्साहित किया गया किन्तु लोकसेवकों की संख्या बढ़ने पर सामूहिक आर्थिक हितों के प्रति उनके अधिक सजग होने से अब वे राजनीतिज्ञों के मोहरे मात्र नहीं रह गए। फिर भी वर्तमान स्थिति में यह सम्भव नहीं था कि लोकसेवकों के मताधिकार का प्रयोग करते समय बाहरी हस्तक्षेप और धमकियों के विरूद्ध सुरक्षा दी जाती है। स्वयं अधिकारी वर्ग अपनी सत्ता का दुरूपयोग करते हुए अन्य नागरिकों के मताधिकार के निर्णय को प्रभावित नहीं कर सकता है।

6.2.3 लोकसेवकों के राजनीति में भाग लेने का अधिकार

ब्रिटिश में ट्रेजरी की महत्वपूर्ण घोषणा इस प्रकार है– "नागरिक सेवकों से सदैव यह आशा की जाती है कि वे राजनीतिक मामलों में चुप रहेंगे और अपने को किसी भी पक्ष की और खुलकर न रखेंगे। " इस प्रकार नागरिक सेवक राजनीतिक गतिविधियों में भाग ले सकते हैं, किन्तु कुछ विशेष नियमों के अधीन रहते हुए अनेक ग्रेडों के कर्मचारी राष्ट्रीय तथा स्थानीय राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेने के लिए पूर्णत: स्वतन्त्र है। अन्य आज्ञा प्राप्त करके अधिकांश राजनीतिक क्रियाओं में भाग लेने के लिए स्वतन्त्र है जबकि कुछ दूसरे व्यक्तियों को राष्ट्रीय राजनीतिक क्रियाओं में भाग लेने की आज्ञा नहीं है, परन्तु स्थानीय राजनीतिक क्रियाओं में भाग लेने की आज्ञा प्राप्त करने के लिए ये स्वतन्त्र है। वास्तव में प्रत्येक श्रेणी के नागरिक सेवक मताधिकार का प्रयोग कर सकते है। कोई भी नागरिक सेवक राजनीतिक दल का सदस्य हो सकता है। सामान्य रूप से नागरिक सेवक मतदान हेतु प्रचार नहीं कर सकते है, वे केवल डाकघर कर्मचारियों तथा इसी प्रकार की दूसरी श्रेणियों के लिए मतदान हेतु प्रचार कर सकते है। मध्य तथा उच्च श्रेणियों में नागरिक सेवकों पर मतदान हेतु प्रचार पर प्रतिबन्ध है, परन्तु मत देने तथा राजनीतिक दल का सदस्य होने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है। वे क्रियाएँ प्रतिबन्धित है जो सार्वजनिक रूप से एक नागरिक सेवक को किसी विशेष राजनीतिक दल से संबंधित करती है।

भारत में लोकसेवकों को मत देने तथा संघ अथवा समुदाय बनाने का अधिकार है, परन्तु उनका अन्य राजनीतिक क्रियाओं में भाग लेना निषिद्ध है। नागरिक सेवक न तो किसी राजनीतिक दल के सदस्य हो सकते है और न किसी राजनीतिक दल को चन्दा ही दे सकते है। सन् 1960 में गृह मन्त्रालय द्वारा जारी किया गया एक परिपत्र इस प्रकार है– "वास्तव में

सरकारी सेवकों से किसी भी राजनीतिक क्रिया में किसी भी प्रकार से भाग लेने की आशा नहीं की जाती है तो भी भारत सरकार अपने कर्मचारियों की सभी श्रेणियों के लिए स्वस्थ संघों की स्थापना का स्वागत करती है जिससे वे अपने कार्य तथा कल्याण के संबंध में उचित हितों को प्रोत्साहित दे सकें। " नागरिक सेवकों के लिए निर्धारित आचरण के लिए मुख्य नियम निम्नांकित है –

कोई भी लोक सेवक किसी भी राजनीतिक दल अथवा किसी ऐसे संगठन का सदस्य नहीं बनेगा अथवा उससे किसी प्रकार भी संबंधित नहीं होगा जो राजनीति में भाग लेता है तथा वह किसी राजनीतिक आन्दोलन अथवा क्रिया में न तो किसी प्रकार से भाग लेगा न चन्दा देगा अथवा किसी प्रकार से सहायता करेगा। संघीय सेवाओं के आचरण नियमों के नियम 4 के अनुसार किसी सरकारी सेवक को किसी व्यवस्थापिका सभा के निर्वाचन में न तो भाग लेना चाहिए और न मतदान हेतु प्रचार करना चाहिए। उसे किसी प्रकार से हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए और न अपने प्रभाव का प्रयोग करना चाहिए। इससे आगे किसी सरकारी सेवक द्वारा राजद्रोह का प्रचार अथवा अनिष्ठापूर्ण विचारों का प्रकट करना उसकी सेवाओं को समाप्त करने के लिए पर्याप्त आधार समझा जाता है। (2) इस बात को दृष्टि में रखते हुए कि भारत सेवक समाज का स्वरूप अराजनीतिक और असाम्प्रदायिक है तथा उपकार्यों को भी दृष्टि में रखते हुए जिनमें वह लगा है, सरकारी सेवक स्वेच्छापूर्वक उसमें प्रवेश कर सकते है और उसके कार्यो में भाग ले सकते है, परन्तु ऐसा तभी किया जा सकता है जबकि उससे उनके सामान्य सरकारी कर्त्तव्यों के उचित रूप से पालन करने में हानि न होती हो। (3) कोई भी सरकारी सेवक किसी प्रदर्शन में भाग नहीं लेगा अथवा सेवा की दशाओं के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार की हड़ताल कराने का प्रयत्न नहीं करेगा। सन् 1964 में लागू संघीय सेवा आचरण का पाँचवा नियम सरकारी सेवकों को राजनीति में भाग लेने की मनाही करता है। वे न तो किसी राजनीतिक आन्दोलन अथवा कार्य के लिए चन्दा दे सकते हैं अथवा वे किसी प्रकार से भी उसकी सहायता नहीं कर सकते है। 1955 के संघीय नागरिक सेवा आचरण का 4 (अ) नियम सरकारी सेवकों का किसी प्रदर्शनी में भाग लेने या सेवा की दशाओं के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार की हड़ताल को निषिद्ध ठहराता है। 1955 के संघीय नागरिक सेवा आचरण के 4 (ब) नियम के अनुसार सेवक किसी मान्यता प्राप्त सेवा संघ अथवा ऐसे संघ में तो अगले 6 मास में सरकार से मान्यता प्राप्त न कर ले, प्रवेश नहीं कर सकते थे। परन्तु अब 1964 के नवीन संघीय नागरिक सेवा आचरण का छठा नियम केवल उन संघों में प्रवेश की मनाही करता है जिनके उद्देश्य भारत की प्रभुसत्ता और अखण्डता के हितों अथवा सार्वजनिक व्यवस्था या नैतिकता के लिए हानिकारक है। इससे आगे सरकारी सेवकों को किन्हीं विशेष कर्त्तव्यों का पालन करना होता है।1923 के अधिकारी गुप्त अधिनियम के उपखण्ड किसी सरकारी लेख के प्रकट करने अथवा किसी ऐसी सूचना देने को मनाही करते है जिसके वे अधिकार नहीं है। केन्द्रीय नागरिक सेवा आचरण के नियम आठ में भी इसी प्रकार के उपबन्ध है। सेवा के अनुशासन तथा उसकी अखण्डता के हित में उन्हें सरकार के द्वारा अपनायी गयी किसी भी नीति की सार्वजनिक रूप से आलोचना करना निषिद्ध है। संघीय नागरिकों के सेवा आचरण के नियम 5 धारा दो राज्य की सुरक्षा को सुनिश्चित करने के लिए सरकारी सेवकों से इस बात की आशा करती है कि उनके परिवार का कोई भी सदस्य

किसी ऐसे कार्य अथवा व्यवहार में सहायता करने या भाग लेने से रुकेगा जिसका उद्देश्य प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सरकार के किसी कानून को भंग करना है।

6.3 लोकसेवकों के न्यायालयों एवं अन्य न्यायाधिकरणों में जाने का अधिकार

आज के लोकतंत्रात्मक कल्याणकारी राज्य में वैश्वीकरण के दौर में लोकसेवक से कानून–व्यवस्था, विकास एवं कल्याण से जुड़े दायित्वों के निर्वहन की अपरिहार्य अपेक्षा की जाती है। समाज–राजनीति एवं लोकसेवाएँ प्रजातान्त्रिक व्यवस्था में अंतरगुंफित संबंधों के सहगामी है। एक–दूसरे को प्रभावित किये बिना नहीं रह सकते। लोकसेवकों पर कार्य करने एवं राजनेताओं एवं दबाव–समूहों द्वारा उनकी इच्छानुसार कार्य करने का दबाव त्रुटियों को आमन्त्रित करता है। ऐसे समय में लोकसेवकों पर राजनीतिक दबाव फलस्वरूप कार्यवाहियां की जाती है।

लोकसेवकों द्वारा पक्षपातपूर्ण राजनीति प्रेरित कार्यवाही के कुचक्रों से बचने के लिए तथा कानून उनके भौतिक अधिकारों की सुरक्षा के लिए उन्हें एक नागरिक मानते हुए प्रावधान किये गये है। जो भी लोकसेवक अपने उच्चाधिकारियों. के आपात, राजनीतिक व सामाजिक दबाव या कानूनी त्रुटियों की वजह से प्रताड़ित–पीड़ित किया जाता है, उसे न्यायालयों की व्यवस्था के अपने प्रशासनिक न्यायाधिकरणों एवं न्यायालयों में जाने के उसके अधिकार की व्यवस्था की गई है।

पदोन्नति, वेतन, परिलब्धियाँ, स्थानान्तरण, निलम्बन, अनिवार्य सेवानिवृत्ति, अवनती एवं अन्य पक्षपातपूर्ण दण्डनीय प्रावधानों के खिलाफ न्याय पाने के लिए लोकसेवकों को प्रशासनिक न्यायाधिकरणों में न्याय पाने का अधिकार दिया गया है। यदि प्रशासनिक न्यायाधिकरणों द्वारा उसे न्याय नहीं मिलता है जो उच्च न्यायालय एवं उच्चतम न्यायालय में उसे अपनी वेदना व्यक्त करने का कानूनी अधिकार है।

आज के युग में पक्षपात युक्त राजनीतिक व अत्यधिक जनापेक्षाओं के दबाव के कारण प्रशासन को कई कानूनी पेचीदगियों का सामना करना पड़ता है। अत: लोकसेवकों को त्वरित न्याय द्वारा राहत दिलाने में ये प्रशासनिक न्यायाधिकरण महत्वपूर्ण योगदान अदा करते रहे है। सामान्य न्यायालयों में त्वरित न्याय एक दिवास्वप्न है। इस न्यायिक अभिरक्षा कवच के कारण आज लोकसेवक निडर होकर सुरक्षा भाव से लोकसेवा के कार्यो में कर्मशील है।

6.3.1 प्रशासकीय न्यायाधिकरण – अवधारणा एवं विकास

भारत में भी अन्य देशों की भाँति प्रशासकीय न्यायाधिकरणों का तेजी से विकास हो रहा है। अधिनिर्णय की प्रणाली के रूप में ये न्यायाधिकरण वस्तुत: देश के संवैधानिक तन्त्र के एक स्थायी अंग बन गये है। मान्यता प्राप्त उनकी संख्या भी निरन्तर बढ़ रही है। ब्लेकली तथा ओटमेन प्रशासकीय न्यायाधिकरणों को 'प्रशासकीय न्यायालय' कहना पसन्द करते है। उनकी परिभाषा करते हुए वे कहते हैं कि "ये साधारण न्यायिक प्रणाली के बाहर स्थित ऐसी सत्ता हैं, जो उस समय विधियों की व्याख्या करते हैं और उन्हें लागू करते है जब लोक प्रशासन के कार्यो

पर औपचारिक मुकदमों या अन्य स्थापित रीतियों द्वारा आक्रमण होता है।" प्रशासकीय अधिनिर्णय प्राधिकारियों का एकमात्र कार्य होता है। यह कार्य उन्हें प्रशासकीय तथा विनियामक कार्यो के अतिरिक्त सौंपा जा सकता है। प्रशासकीय अधिनिर्णय के कई माध्यम हो सकते हैं, जैसे– (1) मंत्री (2) विभाग का स्थायी प्रधान (3) प्रशासी न्यायाधिकरण (4) कोई विशेष समिति या आयोग (5) विशिष्टीकृत विधि न्यायालय (6) एक सदस्यीय न्यायाधिकरण या (7) मिश्रित न्यायाधिकरण।

सरकारी कार्यो में असाधारण वृद्धि होने के परिणामस्वरूप कार्यपालिका के हाथों में अत्यधिक शक्ति केन्द्रित होती जा रही है। रॉब्सन के अनुसार, " ब्रिटिश संविधान में गत आधी शताब्दी के दौरान जो आश्चर्यजनक विकास हुआ है उनमें से एक यह है कि राज्य के बड़े विभागों तथा न्यायालयों के बाहर अन्य अनेक निकायों तथा व्यक्तियों ने न्यायिक शक्ति प्राप्त कर ली है।"

भारत जैसे कल्याणकारी राज्य में बहुत–से विषयों पर विधि–निर्माण करना अत्यन्त आवश्यक होता है। परिणामत: कानूनों की संख्या बहुत अधिक बढ़ जाती है।

यह व्यवस्था दो अपरिहार्य किन्तु दु:खद परिणामों की जनक हैं– (1) अधिक मुकदमेबाज तथा (2) व्यक्तियों की स्वतन्त्रता पर अधिकाधिक प्रतिबन्ध। कल्याणकारी राज्य में सामान्य व्यक्ति के जीवन में सत्ता का हस्तक्षेप अपेक्षाकृत अधिक होता हैं

मूलत: व्यक्ति तथा शासन की सत्ता के बीच विवाद के क्या कारण हैं? सामान्यत: इसकी शुरूआत विधायी अधिनियम से होती है। बहुत से कानूनों द्वारा समाज के एक बड़े वर्ग के लिए विस्तृत योजनाएँ प्रारम्भ की जाती है (उदाहरण के लिए, राष्ट्रीय बीमा) या किसी मंत्रालय तथा अन्य अधिकारियों को जनसेवा सम्बन्धी कार्य सौंपा जाता है (जैसे शिक्षा या स्वास्थ्य) ऐसे कानून अपने सभी उद्देश्यों को प्राप्त करने में अपने आप में कदाचित ही पूर्ण होते है। इन अधिनियमों के परिपालन के दौरान प्रशासकीय प्राधिकारियों को अनेक निर्णय करने पड़ते है। इनमें से बहुत से निर्णय नागरिकों के अधिकारों को प्रभावित करते हैं एवं बाधा प्रस्तुत करते हैं। एक बार किसी निर्णय पर यदि कोई आपत्ति की जाती है तो दूसरा निर्णय आवश्यक हो जाता है। यह नवीन निर्णय पहले के निर्णय की पुष्टि कर सकता है या उसे रद्द कर सकता है। ये निर्णय साधारण विधि न्यायालयों द्वारा ही किये जाते हैं। बहुधा कानून ही यह निर्धारित करता है कि भविष्य में ये निर्णय विशेष न्यायाधिकरणों द्वारा अथवा मंत्री द्वारा किये जाये। प्रशासकीय तत्वों को अधिनिर्णय सम्बन्धी शक्तियों का प्रत्यायोजन इसलिए आवश्यक होता है कि आधुनिक सरकारें सामाजिक या आर्थिक महत्व सम्बन्धी कार्यो को उचित रीति से सम्पन्न कर सकें।

अर्द्धन्यायिक – अभिप्राय

अर्द्धन्यायिक शब्द का प्रयोग कुछ ऐसी शक्तियों का वर्णन करने के लिए किया जाता है जो प्रशासकीय प्राधिकारियों में निहित तो हैं, किन्तु अपने प्रयोग के ढंग से एक सीमा तक उनका स्वरूप न्यायिक होता है एवं उसी के नियन्त्रण के अधीन होता है। विद्वानों ने (अर्द्ध) शब्द के अर्थ दिये हैं– मानो, पूर्णत: नहीं, लगभग अनुरूप, लगभग आदि। किसी कार्य को

न्यायिक कार्य तब कहा जाता है जब वह कार्य न्यायालय द्वारा किया जाता है। वही कार्य जब प्रशासकीय न्यायाधिकरण दारा सम्पन्न किया जाता है, तो अर्द्ध–न्यायिक कहलाता है।

उपादेयता

प्रशासकीय न्यायाधिकरण व्यक्ति तथा सार्वजनिक सत्ता के बीच समुचित सम्बन्ध स्थापित करने की दृष्टि से प्रगतिशील होते हैं। वे नागरिक के लिए स्वतन्त्रता तथा न्याय और आधुनिक ढंग की सरकार की आवश्यकताओं के मध्य संतुलन स्थापित करने का प्रयत्न करते हैं। एक प्रश्न जो अपरिहार्यता: हमारे सामने उपस्थित है, यह है कि विधानमण्डल में इन विवादों के निर्णय हेतु सामान्य न्यायालय की अपेक्षा प्रशासकीय न्यायाधिकरण को ही क्यों पसन्द किया जाता है? इसमें कोई संदेह नहीं है कि साधारण विधि न्यायालयों के कार्य अति प्रशंसनीय रहे हैं किन्तु सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्रों में आधुनिक सामाजिक सेवा वाले राज्यों के लिए जो दिनों–दिन अधिकाधिक महत्वपूर्ण होते जा रहे हैं, सामान्य न्यायालय बहुत अधिक उपयुक्त नहीं है। एक नवीन प्रकार का न्याय, जिसमें समाज–कल्याण की भावना पायी जाती हो, वांछनीय है, वस्तुत: यह समय की मांग भी है। प्रशासकीय न्यायाधिकरणों के उद्भव एवं विकास से लोक–हित की भावना से युक्त न्यास सम्भव होता है। "उन्नीसवीं शताब्दी में सरकार के कार्यो का प्रसार एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्रों में होने, समुदाय के सामान्य कल्याण, सुरक्षा तथा स्वास्थ्य के हित में व्यक्ति के अधिकार उत्तरोत्तर सीमित होने, सेवायोजन की शर्तो पर सामूहिक नियन्त्रण का विकास होने और रहने के ढंग तथा लोगों की प्रारम्भिक आवश्यकताओं के विकास के फलस्वरूप अधिनिर्णयन की एक ऐसी तकनीक की आवश्यकता उत्पन्न हो गयी है जो विधि न्यायालयों की जटिल एवं महंगी मुकदमेबाजी की तुलना में सामाजिक आवश्यकता के अधिक अनुकूल हो। " एक नवीन प्रकार के न्याय की मांग उत्पन्न हो गयी है जो डीन रोस्को पाउण्ड के शब्दों में, "जब व्यक्ति अपनी बता कहते हैं उस समय हस्तक्षेप मत करो वाली पद्धति से वह मिलती–जुलती है. . . । उनका अस्तित्व वांछनीय हो या न हो किन्तु इसमें कोई संदेह नहीं है कि प्रशासकीय कानून के पुनर्जीवन के कई कारण हैं, जैसे समाज के विरूद्ध नवीन प्रकार के अपराधों का उद्भव, सामाजिक अधिकारों की एक नवीन अवधारणा का विकास, सामान्य कल्याण की तीव्र इच्छा तथा उन्नीसवीं शताब्दी के अति व्यक्तिवादी अधिकारों की दिव्यता में पूर्ण विश्वास का अभाव।"

विकास

अत: प्रशासकीय न्यायाधिकरण का सभी देशों में शीघ्रता से विकास स्वाभाविक है। यह किसी विशेष संवैधानिक प्रणाली से ही सम्बद्ध नहीं है। जब डोनोमोर समिति की नियुक्ति की गयी थी, उस समय इंग्लैण्ड में बेकारी सीमा तथा अंशदायी और युद्ध–सेवानिवृत्ति वेतन के क्षेत्र में पहले से ही कुछ प्रशासकीय न्यायाधिकरण विद्यमान थे और स्थानीय अधिकारियों को निजी भूमि को प्रयोग में लाने या उसके प्रयोग को नियन्त्रित करने के पर्याप्त अधिकार प्राप्त थे। तब से बड़ी संख्या में प्रशासकीय न्यायाधिकरण की स्थापना हो रही है। सरकार के क्रियाकलापों तथा उत्तरदायित्वों का प्रसार ही इनका प्रधान कारण है।

प्रशासकीय न्यायाधिकरणों के विकास के कारण

प्रशासकीय न्यायाधिकरण प्रत्येक देश के संवैधानिक क्षेत्र का एक स्थायी भाग बन गये हैं। फ्रेक्स समिति के अनुसार, "सामाजिक कल्याण के लिए सरकार के क्रियाकलाप तथा उत्तरदायित्व के निरन्तर प्रसार के कारण ऐसे अनेक अवसरों की सम्भावना उत्पन्न हो गयी है जिनके फलस्वरूप अधिकारों को लेकर किसी व्यक्ति का संघर्ष प्रशासन, अन्य नागरिक या निकाय के साथ प्रारम्भ हो जाता है और इसी कारण युद्धोत्तरकालीन वर्षो में न्यायाधिकरणों के क्रियाकलापों तथा इनके महत्व में पर्याप्त वृद्धि हुई है।"

(1) सरकारी क्रियाकलापों का प्रसार तथा नागरिकों के जीवन में शासन की अधिकाधिक छाप एवं हस्तक्षेप।

(2) आधुनिक प्रशासन का सम्बन्ध अत्यन्त तकनीकी एवं जटिल मामलों से भी है। इसका कारण यह है कि समाज का स्वरूप जटिल ओर वैभिन्नय–प्रधान हो गया है। सामान्य अदालतों में ऐसे विशेषज्ञ नहीं होते जो इन मामलों से पैदा होने वाली समस्याओं का निर्धारण कर सकें। अत: उचित यही समझा जाता है कि ऐसे मामले विशेष न्यायाधिकरणों को सौंप दिये जायें, जिनमें विशेषज्ञ होते हैं।

(3) वैयक्तिक अधिकारों को लोक–हित के अधीन करने की प्रवृत्ति भी प्रशासकीय न्यायाधिकरणों को प्राथमिकता देने का एक कारण है।

(4) न्यायाधीश मामलों को सामान्य विधि की व्यक्तिवादी परम्परा की दृष्टि से देखते हैं। यह दृष्टिकोण स्वतन्त्रता की उस अवधारणा के अनुकूल नहीं है जो कल्याणकारी राज्य के संदर्भ में आज मान्य है। जैक्सन का कथन है कि "सामाजिक विधान के प्रभाव को दो व्यक्तियों के बीच का ही मामला नहीं समझा जा सकता, लेकिन परम्परागत विधि–प्रणाली का केन्द्र ही एकाकी मामला हैं।"

(5) जहाँ शीघ्र कार्यवाही की आवश्यकता होती है वहाँ प्रशासकीय न्यायाधिकरणों को प्राय: प्रधानता दी जाती है।

(6) न्याय प्राप्त करने में कम व्यय, त्वरित न्याय की प्राप्ति तथा प्रक्रिया एवं साक्ष्य सम्बन्धी जटिलताओं से मुक्ति आदि ने प्रशासकीय न्यायाधिकरणों की वृद्धि में काफी योग दिया है। कम साधनों वाला कोई मनुष्य साधारण विधि न्यायालयों की खर्चीली तथा विलम्बकारी प्रक्रियाओं का भार वहन नहीं कर सकता।

(7) प्रशासकीय न्यायाधिकरणों द्वारा सामान्य विधि न्यायालयों के कार्यभार में कमी हुई है।

6.3.2 प्रशासनिक अधिकरणों के प्रकार

भारत में विधायी अधिनियम, जो अर्द्ध–न्यायिक सत्ताओं की रचना करते हैं, बहुत बड़ी संख्या में हैं। 1957 तक केन्द्रीय तथा राज्य (असम, बिहार तथा कर्नाटक राज्यों को छोड़कर) अधिनियमों के एक विश्लेषण के अनुसार लगभग 2,870 प्रशासकीय निकाय देशभर में काम कर रहे थे। इस समय वास्तविक संख्या 3,000 से ऊपर हो सकती है। इनमें से 180 तो केन्द्रीय संविधियों के अन्तर्गत स्थापित किये गये हैं। उनमें से कुछ विशुद्ध प्रशासकीय हैं और

कुछ अर्द्ध–न्यायिक हैं। ऐसा अनुमान है कि फिलहाल 100 से ऊपर प्रशासकीय न्यायाधिकरण केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा पारित कानूनों के अधीन कार्यरत है।

केन्द्रीय प्रशासकीय न्यायाधिकरण का गठन 1985 में हुआ था और वर्तमान में उसकी 17 नियमित पीठे हैं जो उच्च न्यायालयों की प्रमुख पीठों में कार्यरत हैं। ये पीठें उच्च न्यायालयों की अन्य पीठों में भी दौरा करके बैठकें करती है, के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष तथा सदस्यों की वर्तमान संख्या इस प्रकार है– अध्यक्ष 1, उपाध्यक्ष 16, सदस्य (प्रशासनिक एवं न्यायिक) 49।

वर्तमान में निम्नलिखित राज्यों में प्रशासकीय न्यायाधिकरण अधिनियम के अन्तर्गत गठित प्रशासकीय न्यायाधिकरण है– (1) आन्धप्रदेश (2) हिमाचल प्रदेश (3) उड़ीसा (4) कर्नाटक (5) मध्यप्रदेश (6) महाराष्ट्र (7) तमिलनाडु एवं (8) राजस्थान।

वर्तमान में केन्द्रीय प्रशासकीय न्यायाधिकरण के न्यायक्षेत्र में राष्ट्रीय श्रम संस्थान, वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद, केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड, कृषि अनुसंधान परिषद, कर्मचारी राज्य बीमा निगम आदि जैसे कुछेक संगठन ही लिये गये हैं। यद्यपि न्यायाधिकरणों के न्यायक्षेत्र में अन्य संगठनों को लाने के लिए अधिकाधिक प्रार्थनाएँ आ रही हैं, किन्तु इस समय कोई अतिरिक्त कार्यभार अंगीकार करने की स्थिति में नहीं है।

प्रशासकीय न्यायाधिकरणों के गठन का एक उद्देश्य यह है कि वादाकारियों को त्वरित न्याय प्राप्त हो। केन्द्रीय प्रशासकीय न्यायाधिकरण अनेक बाधाओं के बावजूद यह कार्य काफी हद तक पूरा कर सका है। मामलों को निपटाने में केन्द्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण द्वारा लिया गया औसत समय पारम्परिक न्यायालयों दारा लिये गये समय की अपेक्षा सामान्यत: कम होता है। इस न्यायाधिकरण की स्थापना के बाद (31 दिसम्बर, 1993 तक) इसे अधिनिर्णय के लिए उच न्यायालय द्वारा संदर्भित मामलों सहित 1,76,734 वाद प्राप्त हुए जिनमें से 1,36,706 का निपटारा किया जा चुका है। पुराने मामलों को निपटाने पर अब विशेष ध्यान दिया जा रहा है।

6.3.3 प्रशासकीय अधिनिर्णय के मुख्य प्रकार

सभी देशों में प्रशासकीय अधिनिर्णय की समान व्यवस्था नहीं है। प्रशासकीय न्यायाधिकरणों का उन देशों की अपनी राजनीतिक संस्थाओं तथा जीवन–प्रणाली के ढाँचे के अनुकूल होना आवश्यक है। फिर भी चूकीं मूल समस्या अर्थात् व्यक्ति तथा प्रशासन के मध्य सम्बन्ध एक से ही हैं, अत: विभिन्न देशों के प्रशासकीय न्यायाधिकरणों का तुलनात्मक अध्ययन लाभकारी है। प्रशासकीय न्यायाधिकरणों को सामान्यत: दो मुख्य प्रकारों में विभाजित कर सकते है–आंग्ल–सेक्सन तथा महाद्वीपीय (अर्थात् यूरोपीय)। प्रशासकीय अधिनिर्णय की भारतीय प्रणाली आंग्ल–सेक्सन प्रणाली पर आधारित है।

6.3.4 प्रशासकीय न्यायाधिकरणों के गुण

प्रशासकीय न्यायाधिकरणों के ऐसे कई गुण हैं जो साधारण विधि न्यायालयों में नहीं हैं। फ्रेंक्स समिति के समक्ष साक्ष्य देते हुए बर्नार्ड श्वार्ज ने कहा था, "कुछ लोग यह तर्क प्रस्तुत कर सकते हैं कि जिन कारणों से अदालतों के बजाय विभिन्न न्यायाधिकरणों के हाथों में अधिनिर्णय के प्राधिकार सौंपे गये थे, वे कारण अब विद्‌यमान नहीं है और इसलिए अब यही श्रेयस्कर है कि अब तक बने इन न्यायाधिकरणों को समाप्त कर देना चाहिए और उनके अधिकार– क्षेत्र उपयुक्त न्यायालयों को हस्तान्तरित कर देने चाहिए। किन्तु यह समाधान भ्रमवश सरल भले ही दिख पड़े, राजनीतिक या व्यावहारिक रूप से पूर्णत: अव्यवहार्य है और यदि किसी प्रकार ऐसा किया भी जा सका तो यह कदापि वांछनीय नहीं होगा कि घड़ी की सुई पुन: उस स्थिति तक पीछे लौटा दी जाये जहाँ आधुनिक प्रशासकीय न्यायाधिकरण के उद्भव से पूर्व थी। यह मार्ग इस तथ्य की, अवहेलना करता प्रतीत होगा कि प्रशासकीय विधि के विकास से आंग्ल–अमेरिकी विधि प्रणाली को निश्चित लाभ अथवा हानि हुई है। अत: आज मुख्य समस्या यह है कि इनके दोषों का परित्याग करते हुए इनके लाभों को बनाये रखा जाये। प्रशासनिक न्याय की विधिवत पूर्ण समाप्ति से दोनों का ही अन्त हो जायेगा। न्यायाधिकरणों के मुख्य लाभ निम्नलिखित है –

(1) प्रशासकीय न्याय अधिक सस्ता है, बहुत–से प्रशासनिक मामलों में वकील नहीं किये जाते और न फीस देना ही जरूरी होता है। इसी प्रकार बहुत–से प्रशासकीय न्यायाधिकरणों में किसी प्रकार का कोई व्यय नहीं होता। सामान्य विधि न्यायालयों में न्याय बहुत खर्चीला होता है।

(2) प्रशासकीय न्यायाधिकरण अपने कार्य अधिक नमनीयता या लचीलेपन से सम्पन्न करते हैं। वे अपने पिछले निर्णयों या अन्य अधिकारियों के निर्णयों से बंधे नहीं होते और न उनके कार्यो में न्यायिक दृष्टान्त तथा 'विधि के शासन' की धारणा ही बाधक होती है। साक्ष्य के बहुत कुछ तकनीकी नियम ढीले कर दिये जाते हैं, ताकि सभी अपेक्षित तथ्य प्राप्त हो सकें, यहाँ तक कि न्यायाधिकरण के सदस्य भी साक्ष्य खोजने में सक्रिय भाग लेते हैं।

(3) प्रक्रियाओं की मुख्य विशेषताओं में एक बात यह भी है कि उनमें अनौपचारिकता तथा सादगी बरती जाती है। किस प्रकार की अनौपचारिकता तथा सादगी प्रयोग की जानी चाहिए, इस सम्बन्ध में फ्रेक्स समिति के समक्ष सर ऐरिक शेयर ने साक्ष्य देते हुए कहा था कि, " अध्यक्ष तथा न्यायाधिकरण के दो सदस्य एक मेज पर एक तरफ बैठे हुए थे। वादी तथा वादी का मित्र, जो कदाचित किसी ट्रेड यूनियन का सदस्य था, उनके सामने बैठे हुए थे। इसी तरफ बीमा अधिकारी भी था। वे सब बिल्कुल पास–पास बैठे थे। अध्यक्ष या सदस्य जो प्रश्न करते थे, बिल्कुल आपस की बातचीत के रूप में होते थे। कार्यवाही पर वस्तुत: अध्यक्ष का निर्वारण था। मुझे यह बिल्कुल स्पष्ट था कि अध्यक्ष, जो कि एक महिला थी, पूछे गये प्रश्नों दारा वादी के मामले की सहायता के लिए बराबर

प्रयास कर रही थी. . । सामान्यत: यह पूर्णरूपेण अनौपचारिक प्रतीत हो रहा था यहां पर जनता नहीं थी।"

(4) प्रशासकीय न्यायाधिकरण सामान्य न्यायालयों की अपेक्षा जल्दी कार्य करते है, क्योंकि जिस प्रक्रिया का वह अनुगमन करते है वह कम जटिल तथा कम कष्टकारक होती है।

(5) न्यायाधिकरणों के समक्ष संवेदी द्वारा निर्धारित न्यूनतम स्तर मुख्य समस्या होती है। ऐसे मामलों को सामान्य न्यायालयों की अपेक्षा किसी न्यायाधिकरण द्वारा अधिक अच्छी तरह से निपटाया जा सकता है, क्योंकि उसमें विशेष अनुभव तथा प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्ति होते है।

(6) प्रशासकीय अधिनिर्णय के अन्य गुण भी है, जैसे इसमें लचीलापन होता है तथा परिस्थितियों के अनुसार अपने को ढालने की क्षमता होती है एवं शिकायतों की सुनवाई शीघ्रतापूर्वक की जाती है। विधि न्यायालय का दृष्टिकोण रूढ़िवादी एवं अनमनीय होता है, परिणामस्वरूप तेजी से बदलती हुई सामाजिक व्यवस्था की दृष्टि एवं अनुरूपता से सामान्य न्यायालय लाभकारी नहीं है। प्रशासकीय अधिनिर्णय प्रक्रिया नियमों, साक्ष्य के नियमों तथा मौलिक कानून के स्थापित सिद्धान्तों के झंझटों में नहीं पड़ते, अत: प्रशासकीय न्यायाधिकरण की व्यवस्था सामाजिक तथा आर्थिक जीवन के बदलते हुए स्वरूप के साथ स्वर मिलाकर चल सकती है।

(7) प्रशासकीय अधिनिर्णय का अन्य लाभ इसकी संक्षिप्त प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया सम्बन्धी द्वन्द्व की शिकायत नहीं है जो अदालतों में सर्वत्र दिखाई पड़ता है।

(8) इसे हर क्षेत्र में प्रयोग करना संभव है जबकि न्यायिक मुकदमों में इसे प्रयोग के लिए गुंजाइश नहीं है। किसी सत्ता के कार्यो से प्राप्त व्यावहारिक अनुभव का नियमों, विनियमों तथा विधियों के संशोधन में अत्यधिक सरलता से उपयोग किया जा सकता है। न्यायालयों से संबंधित कानून का संशोधन अत्यधिक श्रमसाध्य होता है।

(9) कभी–कभी आपातकालीन अधिकार प्रशासकीय अधिकारियों को किसी अधिसूचना या कार्यपालिका आदेश द्वारा दिये जा सकते हैं या उसके द्वारा वापस भी लिये जा सकते हैं।

(10) न्यायाधिकरण साधारण न्यायालयों के कार्यभार को भी कम करते है।

6.4 सारांश

एक नागरिक होने के नाते एवं 21 वीं सदी के बदलते परिवेश में लोकसेवकों के न्यायोचित अधिकारों एवं मानवाधिकारों पर नये सिरे से विमर्श की आवश्यकता है। अपनी विशिष्ट भूमिका के कारण उससे विशिष्ट व्यवहार एवं निरपेक्ष भूमिका की अपेक्षा तो हम सभी करते है लेकिन बढ़ते राजनीतिक हस्तक्षेप, बढ़ती जनहित याचिकाएँ, भाई–भतीजावाद व भ्रष्टाचार उसके अपेक्षित आचरण को प्रभावित किये बिना नहीं रहते है।

बढ़ते राजनीतिक दबाव ने लोकसेवकों एवं कार्मिक संघों को दलगत राजनीति के व्यापक प्रभाव में अपरोक्ष रूप से ला दिया है। ऐसे में क्यों नहीं लोकसेवकों को केवल वोट देने, हड़ताल

करने एवं संघ बनाने के अधिकार के साथ–साथ उनकी दलों के साथ प्रतिबद्धता व राजनीतिक भूमिका को भी कानूनी स्वीकारोक्ति दे दी जाए।

जटिल एवं व्यापक होती लोकसेवकों की भूमिका, बढ़ती जनापेक्षाएँ, अनावश्यक दखल व कानूनी समस्याओं एवं जटिलताओं का आज लोकसेवकों को सामना करना पड़ता है। अनावश्यक प्रताड़नाएँ एवं पीड़ाएं उनके कार्यक्षेत्र की सहगामिनी बन गई है। ऐसे में एक व्यक्ति एवं नागरिक होने के नाते उसे भी मान–सम्मान के साथ निर्बाध गति से काम करने की न्यायोचित स्थितियाँ प्रदान की जानी चाहिए।

प्रशासकीय न्यायाधिकरण एवं न्यायालय ऐसी परिस्थिति में ही लोकसेवकों को न्याय दिलवाने के अधिकार का सशक्त माध्यम साबित हुए है, जहाँ वह अपने साथ हुए अन्यायपूर्ण एवं अमानवीय, असम्मान पूर्ण व्यवहार के विरूद्ध न्याय पा सकता है। प्रशासकीय न्यायाधिकरण वस्तुत: देखा जाए तो प्रशासकीय न्यायालय ही साबित हुए है तथा ये लोकसेवकों को न्यायिक कार्यो का बोझ न्यायालयों से कम करने में मददगार साबित हुए है। निःसंदेह आज नागरिक सेवकों के राजनीति अधिकार एवं न्याय पाने का अधिकार अत्यन्त संवेदनशील विमर्श व अध्ययन का विषय है।

6.5 अभ्यास प्रश्न

1. लोकसेवकों के राजनीतिक अधिकारों पर एक आलोचनात्मक लेख लिखिए।
2. क्या लोकसेवकों को राजनीति में सामान्य नागरिक की हैसियत से भाग लेने का अधिकार दिया जाना चाहिए?
3. भारत में लोकसेवकों के राजनीतिक अधिकारों की विवेचना कीजिए।
4. लोकसेवकों के प्रशासकीय न्यायाधिकरणों एवं न्यायालयों में जाने के अधिकार की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए।
5. प्रशासकीय न्यायाधिकरणों की अवधारणा पद उपादेयता को स्पष्ट कीजिए।
6. केन्द्रीय प्रशासकीय न्यायाधिकरण पर टिप्पणी लिखिए।
7. प्रशासकीय न्यायाधिकरणों के विकास के कारण क्या रहे है?
8. प्रशासकीय न्यायाधिकरणों के मुख्य गुणों का वर्णन कीजिए।
9. भारतीय संदर्भ में लोकसेवकों के संघ मनाने क्या संघों में उनकी भूमिका पर बेबाक टिप्पणी कीजिए।

6.6 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. अवस्थी एवं माहेश्वरी : लोक प्रशासन, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा
2. डॉ. एस.एल. वर्मा एवं डॉ. बी. एम. शर्मा : प्रबन्धकीय लोक प्रशासन, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2006
3. पीडी शर्मा, बी. एम. शर्मा, नीलम ग्रोवर : भारत में लोक प्रशासन, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 1979

इकाई – 7

फ्रांस में लोक सेवकों के राजनैतिक अधिकार

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 फ्रांस का ऐतिहासिक– भौगोलिक– आर्थिक– सामाजिक – प्रशासनिक परिचय

7.3 फ्रांस में लोक सेवकों के राजनैतिक अधिकार

- 7.3.0 सामान्य परिचय
- 7.3.1 मतदाता के रूप में स्वयं को पंजीकृत करवाने और मत डालने का अधिकार
- 7.3.2 राष्ट्रीय संसद की सदस्यता के लिए चुनाव लड़ने का अधिकार
- 7.3.3 स्थानीय स्वायत्त शासन संस्थाओं के चुनाव में प्रत्याशी बनने का अधिकार
- 7.3.4 राजनैतिक दल या राजनैतिक क्लब का सदस्य बनने और उनके किसी पद को धारण करने का अधिकार
- 7.3.5 सार्वजनिक रूप से भाषण देने का अधिकार
- 7.3.6 चुनाव में खड़े किसी प्रत्याशी, राजनैतिक विषय या राजनैतिक समस्या पर सार्वजनिक रूप से विचार प्रगट करने का अधिकार
- 7.3.7 समाचार पत्र या पत्रिकाओं के माध्यम से राजनैतिक विषयों पर अपने विचार प्रगट करने का अधिकार
- 7.3.8 राजनैतिक दल को स्वयं द्वारा चंदा देने या अन्य किसी व्यक्ति को चंदा देने के लिए प्रेरित करने का अधिकार
- 7.3.9 ऐसे व्यक्ति से जिसका उस लोक सेवक के कार्यालय से कार्य पड़ता है; राजनैतिक कार्य के लिए अनुरोध करने का अधिकार
- 7.3.10 राजकीय कर्तव्य का निर्वाह करते हुए, कार्यालय की पोशाक पहने हुए या सरकारी वाहन चलाते हुए राजनैतिक गतिविधि में भाग लेने का अधिकार
- 7.3.11 कर्मचारी संघ गठित करने और उनका सदस्य बनने का अधिकार
- 7.3.12 प्रदर्शन और हड़ताल करने का अधिकार

7.4 सारांश

7.5 अभ्यास प्रश्न

7.6 संदर्भ ग्रन्थ सूची

7.0 उद्देश्य

इस अध्याय को पढ़ने के पश्चात् आप –

1. फ्रांस की ऐतिहासिक, आर्थिक, सामाजिक, प्रशासनिक और राजनैतिक पृष्ठभूमि का वर्णन कर सकेंगे जिसमें फ्रांस के लोक सेवकों के राजनैतिक अधिकारों का विकास हुआ है।

2. फ्रांस में लोक सेवकों के राजनैतिक अधिकारों का वर्णन कर सकेंगे।
3. फ्रांस में लोक सेवकों के राजनैतिक अधिकारों की स्थिति की तुलना आज भारत, ब्रिटेन और अमरीका से करने में सक्षम होंगे।

7.1 प्रस्तावना

इस अध्याय में फ्रांस में लोक सेवकों के राजनैतिक अधिकारों की अन्य कुछ देशों के लोक सेवकों के राजनैतिक अधिकारों से तुलना करते हुए वर्णन किया गया है। भिन्न–भिन्न देशों में लोक सेवकों के राजनैतिक अधिकारों की अलग–अलग स्थिति देखने को मिलती है। देश के इतिहास– आर्थिक–सामाजिक–राजनैतिक और प्रशासनिक पृष्ठभूमि के आधार पर राजनैतिक अधिकारों का विकास होता है। इन परिस्थितियों में परिवर्तन के साथ–साथ लोक सेवकों के राजनैतिक अधिकारों में भी आवश्यक परिवर्तन किये जाते हैं। फ्रांस में लोक सेवकों के आज जो राजनैतिक अधिकार प्रचलित हैं वे भी ऐतिहासिक, आर्थिक, राजनैतिक, और प्रशासनिक पर्यावरण का परिणाम माने जाते हैं। अत: फ्रांस के लोक सेवकों के राजनैतिक अधिकारों का वर्णन करने से पहले ऐतिहासिक–आर्थिक–सामाजिक पृष्ठभूमि पर यहां एक दृष्टि डालना समीचीन होगा।

7.2 फ्रांस की ऐतिहासिक– आर्थिक–सामाजिक पृष्ठभूमि

फ्रांस पश्चिमी यूरोप में स्थित एक विकसित देश है जिसका क्षेत्रफल 2,13,000 वर्ग मील है और जिसकी जनसंख्या लगभग 6 करोड़ है। भौगोलिक दृष्टि से यह एक पूर्ण इकाई है। देश की भाषा फ्रेंच है और वहां के कैथोलिक ईसाइयों की बहुतायता है। वहां के लोगों में व्यक्तिगत स्वतंत्रता की प्रबल इच्छा देखने को मिलती है फ्रांसिसी दार्शनिकों की जाति मानी जाती है। रूसो, मौंटेस्क्यू वाल्टेयर, सोरेल आदि फ्रांसिसियों ने संसार में राजनीतिशास्त्र के सिद्धान्तों और विचाराधाराओं के निर्माण में अभूतपूर्व योगदान दिया है।

फांस में पहले बूर्बो वंश का शासन था। राजा के अधिकारों को दैवीय अधिकार माना जाता था। राजा के निरंकुश और अत्याचारी प्रवृत्ति के कारण जनता ऊब गई थी। 1789 में अमरीका की स्वतंत्रता के पश्चात सैनिक फ्रांस लौटे जिन्होंने अपने अनुभव और विचारों से नागरिकों को परिचय कराया। परिणामस्वरूप देश ने राजनैतिक करवट ली। निरंकुश, भ्रष्टाचारी और अकुशल शासक के विरूद्ध क्रांति आई। आधुनिक फ्रांस का जन्म हुआ। बूर्बो शासन का अन्त हुआ, फांस में राजनैतिक क्रांति ने जीवन बदल डाला लेकिन फ्रांस को राजनैतिक अस्थिरता ने घेर लिया।

राजनैतिक क्रांति के पश्चात सन् 1791 में फांस ने प्रथम लिखित संविधान को अपनाया। यह सीमित राजतंत्र और संसदीय प्रजातंत्र का मिश्रित रूप लिये हुए था। यह अल्पकालिक रहा। सन 1793 में एक नवीन संविधान को अपनाया जो जैकोबिल्स द्वारा बनाया गया था। यह गणतंत्रीय संविधान था जिसके तहत प्रत्यक्ष निर्वाचन प्रणाली लागू की गई। इस संविधान के तहत वयस्क पुरूषों को मताधिकार प्रदान किये गये। उस समय 24 सदस्यीय मण्डलात्मक कार्यपालिका विद्यमान थी। 1795 की 22 अगस्त को फिर एक नए संविधान को प्रभावी बनाया। इसके तहत 500 वृद्ध पुरूषों की व्यवस्थापिका और मात्र 5 सदस्यों की

कार्यपालिका का गठन किया गया। 1799 में नेपोलियन ने नए संविधान को लागू किया जिसे 'कौंसुलेट' नाम दिया गया। नेपोलियन ने सन् 1804 में कौंसुलेट को भंग करके स्वयं को सम्राट घोषित कर दिया। नेपोलियन ने अपने शासन काल के दौरान अनेक सामाजिक–प्रशासनिक–संवैधानिक परिवर्तन लागू किये और अनेक संस्थाओं का निर्माण करके बडे. ही सूझ बूझ से शासन का संचालन किया। तात्कालिक प्रशासनिक परिवर्तनों के लिए फ्रांस आज भी नेपोलियन का ऋणी माना जाता है। 1814 में वाटरलू की पराजय से नेपोलियन साम्राज्य का अन्त हो गया। वैधानिक राजतंत्र और संसदीय पद्धति को फांस ने अंगीकार किया। फ्रांस में 1830 में फिर एक क्रांति हुई और आर्लियन्स वंश के अधीन संवैधानिक राजतंत्र की स्थापना की गई । अगली क्रांति सन् 1848 में हुई जिसके फलस्वरूप आर्लियन्स वंश के शासन का अन्त हो गया और फ्रांस में द्वितीय गणतंत्र की स्थापना की गई।

सन् 1853 में नेपोलियन तृतीय ने फ्रांस के शासन पर आधिपत्य स्थापित करके अपने आपको सम्राट घोषित कर दिया। द्वितीय गणतंत्र तृतीय साम्राज्य में परिवर्तित हो गया। 1870 से 1940 के दौरान तृतीय नेपोलियन का पतन हो गया और इस दौरान 30 सदस्यीय आयोग की स्थापना करके नवीन संविधान के लिए प्रयत्न हुआ, जिसमें 5 वर्षो का समय लगा। तृतीय गणतंत्र का स्वरूप प्रदान करके 1875 में इसे लागू किया गया। यह एक लिखित संविधान था जिसका रूप गणतंत्रात्मक था। इसके तहत संसदात्मक व्यवस्था अंगीकृत की गई। उस दौरान संसद के दो सदन थे। देश में एकात्मक शासन के कारण केवल केन्द्रीय सरकार विद्यमान थी जिसे सम्पूर्ण देश के शासन की बागड़ोर सौंप रखी थी। उस काल में संसदीय सर्वोच्चता विद्यमान थी। सम्पूर्ण फ्रांस 89 प्रान्तों, प्रांत जिलों और जिले कम्यूनों में विभक्त थे। सन 1940 में जर्मनी के हाथों फ्रांस को 'डिगॉल' सेना ने 1944 में जर्मनी से मुक्त कराया। प्रथम संविधान सभा ने फ्रांस का संविधान बनाया जिसे कतिपय कारणों से अस्वीकृत कर दिया गया। परिणामस्वरूप द्वितीय संविधान सभा का गठन करके नवीन संविधान का निर्माण करने के प्रयत्न हुए। चतुर्थ गणतंत्र की स्थापना करके उसे 26 अक्टूबर 1946 को लागू किया गया। 1 जून 1958 को जनरल डिगॉल को प्रधानमंत्री नियुक्त किया। डिगॉल के नेतृत्व में नए संविधान का निर्माण करके इसे 6 अक्टूबर, 1958 को प्रभावी बनाया। इसे पंचम् गणतंत्र का संविधान कहा जाता है। फ्रांस में इस समय गणतंत्रात्मक शासन प्रणाली लागू है। संविधान लिखित, निर्मित और कठोर प्रकृति का है। वहाँ प्रजातांत्रिक गणराज्य है शासन का स्वरूप संसदात्मक है और संसद के दो सदन हैं। नागरिकों को संविधान द्वारा मौलिक अधिकार प्रदान कर रखे है।

फांस की प्रशासनिक व्यवस्था को 'अतिउत्तम' माना जाता है। अति प्राचीन काल से ही फ्रांस की लोक सेवा वहां के नागरिकों के जीवन में केन्द्रीय भूमिका का निर्वाह करती चली आ रही है। इस भूमिका की पृष्ठभूमि में एक तो ऐतिहासिक कारण छुपा हुआ है और दूसरा महत्वपूर्ण कारण वहाँ की राजनैतिक अस्थिरता रहा है। सन् 1789 से 1958 अर्थात लगभग 170 वर्षो में फ्रांस अत्यधिक राजनैतिक अस्थिरता के दौर से गुजरा है। एक के बाद एक शासन व्यवस्थाएँ एवं शासक बदलते रहे और यह भी बहुत जल्दी–जल्दी हुआ। आने वाली प्रत्येक नई व्यवस्था अपने पूर्ववर्ती के उद्देश्य और दृष्टिकोण को पूर्णत: बदल देती थी। सरकार के रूप

परिवर्तन का इतिहास बहुत मनोरंजक रहा है। "1789 से फ्रांस में तीन बार संवैधानिक राजतंत्र रहा। एक बार साम्राज्य शाही, एक बार अर्द्ध तानाशाही तथा पांच बार गणतंत्र रहा। ये अधिकांश परिवर्तन हिंसात्मक तरीके से हुए हैं। " (फेरेल हैडी)

यह भी एक कटु सत्य है कि फ्रांस की राजनीति चाहे अस्थिरता के दौर से गुजरी हो, प्रशासन लगभग अपरिवर्तित ही रहा। बल्कि राजनैतिक अस्थिरता ने तो प्रशासन के दायित्व बढ़ा दिये। यह एक उल्लेखनीय तथ्य है कि यहां सरकार का रूप तानाशाही से प्रजातांत्रिक हुआ और साम्राज्य शाही से गणराज्य बना, किन्तु प्रशासन के बहाव में विशेष परिवर्तन नहीं आया। इसमें कोई दो राय नहीं कि प्रशासन की स्वामीभक्ति बदलती गई और वह अविरल गति से आगे बढ़ता रहा। फ्रांस ने यह सिद्ध कर दिखाया कि "गणराज्य समाप्त हो जाता है परन्तु प्रशासन बना रहता है" (अलफ्रेड डाइमन्ट) । फ्रांस में लोक प्रशासन का इतना महत्वपूर्ण और इतनी अहम् भूमिका को दृष्टिगत रखते हुए कुछ विद्वान फ्रांस को 'प्रशासकीय राज्य' या 'लोक सेवा राज्य' की संज्ञा देते हैं।

फ्रांस की राजनैतिक अस्थिरता के दौर ने वहां के प्रशासन की जिम्मेदारियां अत्यधिक बढ़ा दीं। "जब संसद कार्य नहीं करती तो अतीत के व्यवस्थापन के पृष्ठों की छानबीन की जाती है और व्यवस्थापिका को कष्ट दिये बिना ही नई परिस्थिति का सामना कर लिया जाता है। यहां सप्ताहों तक जब कोई सरकार नहीं होती है तो सैकड़ों प्रीफेक्टस फ्रांस को प्रशासित करती रहती हैं" (यूथी)।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, फ्रांस पश्चिमी यूरोप का एक लोकतांत्रिक देश है। यूरोपीय संघ और यूरो–अमरीकी राजनीति में उसका अत्यन्त ही महत्वपूर्ण स्थान रहा है। जर्मनी के साथ फ्रांस की पुरानी रंजिश चली आ रही है, लेकिन मितंरा व कॉल की दोस्ती ने एक नए अध्याय का सूत्रपात किया था, तो भी फ्रांस का मानस जर्मनी के साथ सदैव होड़ करने का ही रहता आया है। जर्मनी का सम्मान या उसका अन्तर्राष्ट्रीय वर्चस्व फ्रांस में एक हीन भावना उत्पन्न करता है। वह किसी भी हालत में जर्मनी की तुलना में अपने को दोयम दर्जे का सिद्ध नहीं होने देना चाहता है। यह भी एक कटु सत्य है कि पश्चिम और पूर्वी जर्मनी के एकीकरण ने भी फ्रांससवासियों में थोड़ी कुण्ठा उत्पन्न की थी। जर्मनी तुलनात्मक दृष्टि से औद्योगिक देश है और जर्मनी की तुलना में फ्रांस एक कृषि प्रधान देश माना जाता है। गैट पर हस्ताक्षर करने के मुद्दे पर भी दोनों देशों में इसी कारण तनाव व्याप्त था, फ्रांस के किसान गैट के अत्यंत ही खिलाफ थे, जबकि जर्मनी के व्यापारी गैट के पक्षधर थे। इसलिए 'यू.एस. ई. सी. एग्रीमेंट' का फ्रांस के किसानों ने घोर विरोध किया था।

यहां संक्षेप में फ्रांस की प्रशासनिक व्यवस्था पर एक दृष्टि डालना समीचीन होगा। फ्रांस की प्रशासनिक व्यवस्था अत्यधिक केन्द्रीयकृत है। फ्रांस में लोक सेवकों का कार्यक्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। राज्य का रूप कल्याणकारी प्रकृति का है। 'अहस्तक्षेपवादी राज्य' के दर्शन ने फ्रांस और जर्मनी को कभी प्रभावित नहीं किया। लोक सेवकों के पास प्रशासनिक सत्ता व स्वविवेक की असीमित शक्ति है। प्रशासनिक न्यायालय और प्रशासनिक विधि फीस के प्रशासन की अनूठी व्यवस्था है। लोक उद्यमों की वहां बहुतायत देखने में आती है। अधिक नियोजन को राज्य में

सहर्ष स्वीकार किया है। वहां की परिस्थितियों ने देश को आर्थिक नियोजन को अपनाने के लिए मजबूर किया था।

जर्मनी, भारत और ब्रिटेन की भांति ही फ्रांस में लोक सेवाओं में अभिजात वर्ग का प्रतिनिधित्व अधिक हैं। तालिका 1 के अवलोकन से स्पष्ट हो जाता है कि अमरीका की भांति फ्रांस में समाज के सभी वर्गो के लोगों का समान प्रतिनिधित्व नहीं है। केन्द्रीय प्रशासनिक विभागों में 51 प्रतिशत उच्च वर्ग और 32 प्रतिशत मध्यम वर्ग के वरिष्ठ कार्यपालक कार्यरत थे (तालिका 4. 1) । कार्यरत वर्ग से 14. 2 प्रतिशत वरिष्ठ कार्यपालक थे। धनी परिवार के सम्पूर्ण सुख–सुविधा से सम्पन्न तथा श्रेष्ठ विद्यालय, महाविद्यालय ही प्रतियोगी परीक्षाओं, जो कि अत्यन्त ही कठिन प्रकृति की होती है, में सफल हो पाते हैं। इस कारण फ्रांस की लोक सेवा मुख्यत: समाज के सम्पन्न वर्ग का ही प्रतिनिधित्व करती हैं।

तालिका : 4.1

केन्द्रीय प्रशासनिक विभागों में वरिष्ठ कार्यपालकों की पृष्ठभूमि (प्रतिशत में)

वर्ग	जर्मनी	फ्रांस	अमरीका
उच्च वर्ग (Upper Classes)	61.7	51	41
मध्यम वर्ग (Middle Classes)	29.7	32	30
कार्यरत वर्ग (Working Classes)	4.7	14.4	29
अन्य, ज्ञात नहीं (Others, Not Known)	3.8	2.2	-
योग	100	100	100

फ्रांस में लोक सेवा को जीवन वृत्ति के रूप में स्वीकार करते हैं। एक बार सेवाओं में प्रवेश करने के पश्चात सेवानिवृत्ति आयु तक इनमें बने रहने की प्रवृति देखने में आती है। लोक सेवा की सुविधाएं, अवकाश प्राप्ति लाभ, लोक सेवाओं की समाज में प्रतिष्ठा आदि कारणों से लोक सेवा त्यागने के बजाय उनकी यही कामना करती है कि उनकी भावी पीढ़ी भी लोक सेवा में ही आ जावे। इस मनोकामना की पूर्ति के लिए वे अपनी संतान को स्कूली शिक्षा के स्तर से ही तैयार करना प्रारम्भ कर देते हैं और इसमें अधिकांश को सफलता भी मिल जाती है। शायद संसार भर में सबसे कठिन और कठोर प्रतियोगी परीक्षा के माध्यम से फ्रांस की लोक सेवा में प्रवेश हो पाता है। इन कठिन परीक्षाओं में सफलता प्राप्त करने के विचार से लोक सेवकों की भावी पीढ़ी भी परिश्रम करने में कोई कोर–कसर नहीं छोड़ती है। उसी मेहनत का परिणाम है कि पीढी दर पीढ़ी परिवार में अधिकांश अगले वंशजों को आशातीत सफलता भी हाथ लगती रहती है।

तालिका : 4.2

फ्रांस में लोक सेवकों का तुलनात्मक वंश परम्परागत व्यवसाय (प्रतिशत में)

	पिता का व्यवसाय	वरिष्ठ शासन संबंधियों की संतान जो स्वयं लोक सेवक बने	कार्य बल में शासन संबंधियों की संतान

	उदार व्यवसाय (Liberal Profession)	11.7	11.8
	लोक सेवा अधिकारी (नागरिक एवं सैन्य)		
	(Civil Service Officials) Civil and Military)	48.4	10.5
	शिक्षक, वैज्ञानिक व्यवसाय		
	(Teachers, Scientific Professions)	9.9	20.3
	कलात्मक व्यवसाय (Artistic Profession)	0	7.1
	उद्‌यम कार्यपालक (Business Executive)	30	50.2
	योग	**100**	**100**

स्त्रोत : लुक रूबन : द फ्रेंच सिविल सर्विस, 2007, पृ. 50

फ्रांस में लोक सेवा वंश परम्परागत गुण का शक्तिशाली तत्व के रूप में पाया जाता है। सन 1982 में केन्द्रीय सरकार या स्थानीय संस्थाओं के 36 प्रतिशत कर्मचारियों के पिता सार्वजनिक क्षेत्र में कार्य कर चुके थे। इस प्रकार की भर्ती की आनुवांशिकता लोक सेवा के उच्च वर्ग में और भी अधिक पायी गई, 'सी' और 'डी' वर्ग में जहां 30 प्रतिशत ऐसे लोक सेवकों की तुलना में 'ए' वर्ग में 45 प्रतिशत था। पिता ही नहीं वरण 25 प्रतिशत लोक सेवकों के दादा भी लोक सेवा में रह चुके हैं। यूरोप के अन्य कुछ देशों में भी लोक सेवाओं में वंशानुगत गुण देखा गया है। जैसे जर्मनी में एक समय 44. 3 प्रतिशत लोक सेवकों के पिता वरिष्ठ लोक सेवक के रूप में कार्य कर चुके थे।

फ्रांस में लोक सेवाओं में महिलाओं की संख्या में दिन प्रतिदिन वृद्धि की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर हो रही है। उन 1993 में केन्द्रीय सरकार की नियमित सेवा में महिलाओं का प्रतिनिधित्व 54 प्रतिशत था। विभिन्न सेवाओं पर दृष्टि डालने से ज्ञात होता है कि लोक सेवा में 82 प्रतिशत क्लर्क के पदों पर महिलाएं विद्‌यमान थी, मध्य स्तर पर इनका प्रतिशत 62 था। स्कूल अध्यापक और सामाजिक कार्यकर्ता के तीन चौथाई पदों पर महिलाएं कार्यरत हैं।

7.3 फ्रांस में लोक सेवकों के राजनैतिक अधिकार

किसी–किसी देश में समस्त लोक सेवकों को एक से ही राजनैतिक अधिकार दे रखे हैं, चाहे वे किसी भी विभाग या किसी भी पद पर नियुक्त हों। जबकि कहीं–कहीं सेवा या पद के अनुसार समस्त लोक सेवकों को दो या तीन वर्गों में विभक्त करके उन्हें कम या अधिक राजनैतिक अधिकार प्रदान कर रखे हैं। भारत और फ्रांस में इस बात को लेकर समानता विद्‌यमान है कि दोनों देशों में सबसे नीचे के पद से लेकर देश के सर्वोच्च पद पर कार्यरत सभी लोक सेवकों को एक से राजनैतिक अधिकार प्रदान कर रखे हैं। भारत में अत्यधिक सीमित राजनैतिक अधिकार प्रदत्त हैं तो वे सभी के लिए अत्यधिक सीमित है। फ्रांस में लोक सेवकों को बहुत अधिक राजनैतिक अधिकार दे रखे हैं तो वे सभी को बहुत अधिकार दे रखे हैं। वर्तमान में अमरीका में लोक सेवकों को दो वर्गों में विभक्त करके एक वर्ग को बहुत अल्प राजनैतिक अधिकार दे रखे है जबकि दूसरे वर्ग को अधिक अधिकार प्रदान कर रखे है। जहां तक ब्रिटेन का प्रश्न है वहां लोक सेवकों को तीन वर्गों में बांट कर सोपान में सबसे नीचे के स्तर पर कार्यरत वर्ग को सबसे ज्यादा राजनैतिक अधिकार प्रदान कर रखे है, मध्यम स्तर पर

कार्यरत लोक सेवकों को कुछ कम और सर्वोच्च स्तर पर कार्य कर रहे लोक सेवकों को बहुत ही कम राजनैतिक अधिकार प्रदान कर रखे है।

राजनैतिक अधिकारों के विषय में किसी–किसी देश में संविधान में प्रावधान है, तो कहीं अधिनियम, नियम और उप–नियम बना कर इन्हें प्रभावी बना रखा है, तो कहीं पर कार्यपालिका आदेश द्वारा इन्हें लागू कर रखा है। फ्रांस में इस संबंध में कानून पारित कर रखा है जिसमें आवश्यकतानुसार समय–समय पर संशोधन किये गये हैं। लोक सेवकों के हड़ताल के अधिकार को तो फ्रांस में संविधान द्वारा मान्यता प्रदान कर रखी है। अमरीका में वर्ष 1993 में 'हेच अधिनियम' द्वारा समस्त लोक सेवकों के राजनैतिक अधिकारों को अत्यधिक प्रतिबंधित कर दिया। वर्ष 1993 में ' कर्मचारी राजनैतिक गतिविधि अधिनियम' बनाकर लोक सेवकों को दो वर्गों में विभक्त करके अमेरिका में एक वर्ग को बहुत राजनैतिक अधिकार दे दिये जबकि दूसरे वर्ग पर पहले से चले आ रहे प्रतिबंध अभी भी प्रभावी हैं। वर्ष 1993 में पारित अधिनियम तीन फरवरी 1994 से प्रभावी बनाया गया। भारत और ब्रिटेन में स्थिति कुछ भिन्न है। इन दोनों देशों में राजनैतिक अधिकारों से संबंधित कोई अधिनियम नहीं होकर इन्हें कार्यपालिका आदेश और देश में प्रचलित लोक सेवा आचार संहिता रो प्रभावी बना रखा है।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, फ्रांस में लोक सेवकों के अधिकारों के संबंध में कानून बना रखा है जिससे ये प्रभावी बनाए गए हैं। अधिकारों के साथ–साथ उनके दायित्वों का भी उसमें उल्लेख देखने को मिलता है। एक बार लोक सेवक के रूप में नियुक्ति हो जाने के पश्चात उनका यह कानूनी दायित्व बन जाता है कि वे सरकारी काम, जो उन्हें सौंपा जाए, उसे पूरा करें, पदसोपान में अपने से उच्च अधिकारियों के आदेशों का पालन करें। अपने कार्य में गोपनीयता बरतें (यह सामान्य गोपनीयता फ्रांस की राजकीय गोपनीयता अधिनियम के अतिरिक्त है) और वे अपने कार्य और दायित्वों का निर्वाह तटस्थ और निष्पक्षता से सम्पन्न करें।

देश में जो एक सामान्य नागरिक को स्वतन्त्रताएं प्राप्त हैं सामान्यत: फ्रांस में लोक सेवकों को भी प्रदत्त हैं। इसमें उनके आवागमन की स्वतंत्रता, अपने विचार व्यक्त करने और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, निर्वाचन के समय अपना मत डालने की स्वतंत्रता और यहां तक की उन्हें स्थानीय संस्थाओं और केन्द्रीय संसद के लिए चुनाव में खड़ा होने की स्वतंत्रता भी प्राप्त है। फ्रांस में लोक सेवकों को प्राप्त राजनैतिक अधिकारों का यहां विस्तार से वर्णन किया जा रहा है।

7.3.1 मतदाता के रूप में स्वयं को पंजीकृत करवाने और मताधिकार का प्रयोग करना

संसार के समस्त प्रजातात्रिक देशों में लोक सेवकों को यह अधिकार प्राप्त है कि वे अपने आपको मतदाता के रूप में पंजीकृत करवाएं और जब भी उनके देश में चुनाव हो, उस समय वे अपनी इच्छानुसार मताधिकार का इस्तेमाल करें। फ्रांस में भी लोक सेवकों को अपना नाम मतदाता सूची में सम्मिलित करवाने और निर्वाचन के समय मताधिकार का इस्तेमाल करने

का अधिकार है। इसके अलावा भारत में अन्य राजनैतिक अधिकार लोक सेवकों को प्रदत्त नहीं हैं।

7.3.2 राष्ट्रीय संसद की सदस्यता के लिए चुनाव लड़ने का अधिकार

फ्रांस में समस्त लोक सेवकों को राष्ट्रीय संसद के चुनाव में प्रत्याशी के रूप में खड़ा होने का अधिकार प्राप्त है। अगर वे चुनाव हार जाते हैं तो वे वापस अपना पद ग्रहण कर सकते हैं। यदि वे चुनाव जीत जाते हैं तो वे अवकाश पर रहेंगें और अपना कार्यकाल पूर्ण होने पर पुन: सेवा ग्रहण कर लेंगे। फ्रांस में लोक सेवकों को न तो संसद का चुनाव लड़ने के लिए और न ही जीतने के पश्चात उसके कार्यभार के दौरान सेवा से त्यागपत्र देने की कोई आवश्यकता होती है। 1852 तक फ्रांस में लोक सेवक अपने सरकारी सेवा में बने रहते हुए सीनेट की सदस्यता का भी दायित्व का निर्वाह करते थे।

भारत में यदि कोई लोक सेवक संसद के किसी सदन की सदस्यता के लिए चुनाव में खड़ा होना चाहता है तो उसे न केवल अपना नामांकन पत्र भरने से पूर्व पद से इस्तीफा देना चाहिये वरन् यह भी उसे सुनिश्चित करना होगा कि नामांकन भरने से पूर्व उसका इस्तीफा सक्षम अधिकारी द्वारा स्वीकार कर लिया गया हो। ब्रिटेन में भी यह व्यवस्था है कि लोक सेवकों का वह वर्ग जिन्हें चुनाव लड़ने का अधिकार है, दूसरे वर्ग को तो ब्रिटेन में चुनाव में खड़े होने का अधिकार नहीं है, जीतने पर संसद का सदस्य बना रहेगा और कार्यकाल समाप्त होने पर पुन: लोक सेवा ग्रहण कर सकते है। यदि वे चुनाव हार जाते है तो उन्हें एक सप्ताह के भीतर– भीतर सेवा ग्रहण करना अनिवार्य है, अन्यथा वे अपनी लोक सेवा से हाथ धो बैठेंगे। अमरीका में प्रतिबंधित वर्ग को कांग्रेस (संसद) के चुनाव में खड़े होने का अधिकार नहीं है। लोक सेवा के स्वतंत्र वर्ग को भी कांग्रेस की सदस्यता के लिए चुनाव में खड़े होने का अधिकार तभी है जब वे निर्दलीय के रूप में चुनाव लड़ते हैं। भारत और अमरीका में जो व्यवस्था केन्द्रीय संसद के लिए है, वही नियम संबंधित देश की राज्य व्यवस्थापिका के लिए भी लागू है।

तालिका 4.3 में लोक सेवा की पृष्ठभूमि रखने वाले सांसदों की संख्या वर्ष 1958 से 1993 की अवधि की दर्शा रखी है। ग्रांड्स कोपर्स फ्रांस की सर्वोच्च स्तर की लोक सेवा है और अध्यापक को भी फांस में लोक सेवक माना जाता है। वर्ष 1958 में निर्वाचित सांसदों में से 8 प्रतिशत ग्रांड्स कोर्प्स, 9 प्रतिशत अध्यापक और कुल मिलाकर 19. 5 प्रतिशत सांसदों की पृष्ठभूमि लोक सेवक की रही है । वर्ष 1967 को छोड़कर हर अगले निर्वाचन में इस पृष्ठभूमि को रखने वालों की तादाद 1981 तक निरन्तर बढ़ती ही रही है। समीक्ष्य अवधि में सर्वाधिक लोक सेवा की पृष्ठभूमि के सांसदों की संख्या 1981 में पायी गई, यह लगभग 50 प्रतिशत थी। ग्रांड्स कोर्पूस के सर्वाधिक अर्थात् 14. 2 प्रतिशत सांसद वर्ष 1978 में और सर्वाधिक अध्यापकों का प्रतिशत अर्थात् 35. 6 प्रतिशत 1981 में रहा है। लोक सेवा की पृष्ठभूमि का प्रतिशत 1986 और 1988 भी समुचित ऊंचा पर रहा है जो क्रमश: 41. 9 और 41. 4 था। 1993 में इस पृष्ठभूमि के सांसदों का प्रतिशत 33. 6 था। जापान और फ्रांस में अपनी राजनैतिक अभिलाषा पूरी करने के लिए लोक सेवा को सुगम रास्ता माना जाने लगा है।

तालिका : 4.3

संसद सदस्यों में लोक सेवा की पृष्ठभूमि वालों का अनुपात

(प्रतिशत में)

वर्ष	ग्रांड्स कोपर्स	अध्यापक	लोक सेवकों का कुल अनुपात
1958	8.0	9.0	19.5
1962	11.2	10.0	23.7
1967	12.5	16.0	30.0
1968	13.5	12.0	28.5
1973	11.5	16.4	32.0
1978	14.2	20.5	38.8
1981	11.0	35.6	49.9
1986	13.1	24.3	41.9
1988	10.0	27.6	41.4
1993	9.0	17.7	33.6

स्रोत: डी बक्यू और क्यूरमोने (1981); लाकम (1994) से उद्धत लूक रोबन दारा अपनी कृति 'द फ्रेंच सिविल सर्विस' में कोट किया है।
'फ्रांस में संसद के प्रत्येक चुनाव में ग्रांड्स कोर्पस और अध्यापकों के अलावा भी लोक सेवा के अन्य वर्गो से भी निर्वाचित होते रहे हैं।

अपनी व्यावसायिक स्थिति पर बिना विपरीत प्रभाव पड़े फ्रांस में लोक सेवक को राजनैतिक जीवन वृत्ति को अपनाने के असीम अवसर प्राप्त होते हैं। फ्रांस की लोक सेवाओं की राजनैतिक विशेषाधिकार की एक अनूठी विशिष्ठता विद्यमान है। इसकी जड़े अतीत से पायी जाती हैं, प्रशासनिक और राजनैतिक क्षेत्र एक दूसरे से कठोरता रो जुड़ा रहा है क्रांति के समय या जूली राजतंत्र के अधीन लोक सेवा और संसद सदस्यता बहुधा जुड़ी हुई थी। लोक सेवाओं में रहते हुए संसद सदस्य के रूप में भी कार्य करने की अनुमति थी। यह राज्य की समाज में केन्द्रीय भूमिका को प्रदर्शित करता है, जो कि पाँचवें गणतंत्र की राजनैतिक व्यवस्था ने प्रमाणित किया है।

सन् 1958 के पश्चात् राजनीति के क्षेत्र में ज्यादातर वे लोग पाए जाते हैं जो कि पूर्व में लोक सेवक के रूप में कार्य कर चुके हैं। फ्रेंकोइस मितरां को छोड़कर फ्रांस के समस्त राष्ट्रपति, लगभग आधे मंत्रीगण और लगभग 60 प्रतिशत देश के प्रधानमंत्री, वरिष्ठ लोक सेवा में से आए हैं। जेक्यूइस चिराक फ्रांस के अभूतपूर्व प्रधानमंत्री थे जो इस शर्त पर राजनीति में आए थे कि वे वापस लोक सेवा में लौट सकते हैं। मिकल रोकार्ड भी जो फ्रांस के प्रधानमंत्री रहे, वे स्वयं भी पहले लोक सेवक ही थे। जहां तक सांसदों का प्रश्न है, 20 से 40 प्रतिशत वे लोक सेवा की पृष्ठभूमि के रहे हैं (तालिका 4. 3) सत्ताधारी दल के राजनैतिक–सामाजिक आधार के अनुरूप विभिन्न वर्गो के प्रतिनिधित्व में अन्तर आता रहा है। वामपंथी विचारधाराओं वालों के सत्ता में आने पर ग्रांड्स कॉर्पस के प्रतिनिधित्व में गिरावट पायी गई थी, वहीं इस दौरान अध्यापकों के प्रतिनिधित्व में तीव्र गति से इजाफा पाया गया।

वरिष्ठ लोक सेवक राजनीति में प्रवेश करने के पश्चात् राज्य की शक्ति का अधिक सम्मान करते नजर आये हैं, इसके अतिरिक्त उनके व्यवहार में अन्य कोई परिवर्तन नहीं देखा गया। डिगॉल द्वारा वरिष्ठ लोक सेवकों को मंत्रालयों का वितरण विशेषज्ञता के आधार पर किया जाता था, जिसे 1974 के पश्चात् के काल में भी व्यवहार में अपनाया जाने लगा। स्थानीय व राष्ट्रीय स्तर पर अधिकाधिक लोक सेवक निर्वाचन में सफल होकर मंत्रिमण्डल में स्थान प्राप्त करते आए हैं। राजनीति में शीर्ष पदों पर लोक सेवकों को ज्यादा महत्व दिया जाने लगा है और राजनैतिक दल के वरिष्ठ नेतृत्व को लोक सेवकों ने पीछे छोड़ दिया है।

निजी क्षेत्र के व्यक्तियों की तुलना में लोक सेवक सामाजिक–राजनैतिक जीवन में अधिक भागीदारी का निर्वाह करते पाए गए हैं। केन्द्रीय सरकार के लोक सेवकों से स्थानीय सरकार के अधिकारी इस मामले में अधिक प्रतिबद्ध पाये जाते हैं।

7.3.3 स्थानीय स्वायत्त शासन संस्थाओं के चुनावों में प्रत्याशी बनने का अधिकार

स्थानीय स्वायत्त शासन संस्थाओं के चुनाव में भी फांस का कोई भी लोक सेवक प्रत्याशी के रूप में खड़ा हो सकता है, उसे इसके लिए अवकाश लेना होगा, त्यागपत्र नहीं देना है। चुनाव हार जाने की स्थिति में सरकारी सेवा पुन: ग्रहण कर सकता है, चुनाव जीतने की स्थिति में वहां का अपना कार्यकाल पूर्ण होने पर पुनः सेवा ग्रहण कर सकता है। भारत में ग्रामीण या नगरीय स्थानीय संस्था के चुनाव में प्रत्याशी बनने रो पहले लोक सेवक को त्यागपत्र देना होगा। अमरीका में प्रतिबंधित वर्ग के लोक सेवक को स्थानीय संस्था के चुनाव में खड़ा होने का अधिकार नहीं है, हां, अप्रतिबंधित वर्ग के लोक सेवक निर्दलीय उम्मीदवार के रूप में चुनाव लड़ सकते हैं। ब्रिटेन में प्रतिबंधित वर्ग के लोक सेवकों को सक्षम अधिकारी से अनुमति प्राप्त करके स्थानीय संस्थाओं में प्रत्याशी बनने का अधिकार प्राप्त है।

7.3.4 राजनैतिक दल या राजनैतिक क्लब का सदस्य बनने और उसके किसी पद को ग्रहण करने का अधिकार

फ्रांस में समस्त लोक सेवकों को किसी भी राजनैतिक दल या राजनैतिक क्लब का सदस्य बनने और उनके पद धारण करने का अधिकार प्राप्त है। भारत में लोक सेवा के दौरान किसी को भी राजनैतिक दल या राजनैतिक क्लब का सदस्य बनने का अधिकार नहीं है, इनके पद धारण करने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। ब्रिटेन में जिस वर्ग को बहुत कम राजनैतिक अधिकार प्रदत्त हैं उन्हें छोड़कर सभी लोक सेवकों को किसी भी राजनैतिक दल या राजनैतिक क्लब का सदस्य बनने और उनके पद धारण करने का अधिकार प्राप्त है, अमरीका में लोक सेवकों के प्रतिबंधित वर्ग को छोड़ कर शेष कर्मचारी राजनैतिक दल या राजनैतिक क्लब का सदस्य भी बन सकते हैं और उनमें पद ग्रहण भी कर सकते हैं।

7.3.5 सार्वजनिक रूप से भाषण देने का अधिकार

फ्रांस में समस्त लोक सेवकों को सार्वजनिक रूप से किसी भी विषय पर भाषण देने का अधिकार प्राप्त है। भारत में ऐसा अधिकार लोक सेवकों को नहीं है, किसी साहित्यिक या शैक्षणिक संगोष्ठी या सम्मेलन में बहुत ही परिमित ढंग से वे अपने विचार प्रगट कर सकते हैं।

सरकार की योजनाओं और नीतियों की आलोचना से उन्हें बचना चाहिए और राजनैतिक मामलों में भी वे अपने विचार सार्वजनिक नहीं कर सकते। ब्रिटेन में वह वर्ग जिसे बहुत कम राजनैतिक अधिकार प्रदत्त हैं उस वर्ग के लोक सेवक सार्वजनिक मंच से भाषण नहीं दे सकते, शेष लोक सेवकों को यह अधिकार प्राप्त है।

7.3.6 चुनाव में खड़े किसी प्रत्याशी, राजनैतिक विषय या राजनैतिक समस्या पर सार्वजनिक रूप से विचार प्रगट करने का अधिकार

फ्रांस में समस्त लोक सेवकों को सार्वजनिक तौर पर चुनाव में खड़े हुए किसी प्रत्याशी के पक्ष या विपक्ष में,राजनैतिक विषयों पर अपने विचार प्रगट करने का अधिकार दे रखा है। भारत में यह अधिकार प्रदत्त नहीं है। विज्ञान, कला आदि विषयों पर भारत में सक्षम अधिकारी से अनुमति प्राप्त करके लेख छपवाने की अनुमति अवश्य है। ब्रिटेन में प्रतिबंधित वर्ग को छोड़कर शेष सभी लोक सेवकों को यह अधिकार प्राप्त है। अमरीका में लोक सेवकों के स्वतंत्र वर्ग को यह अधिकार प्राप्त है, प्रतिबंधित वर्ग इस अधिकार का प्रयोग तभी तक कर सकते है, जब तक उनके लेख और विचार राजनैतिक प्रकृति के नहीं हैं।

7.3.7 समाचार पत्र या पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से राजनैतिक विषयों पर अपने विचार प्रकट करने का अधिकार

फ्रांस के लोक सेवकों को समाचार पत्र तथा पत्र–पत्रिकाओं में राजनैतिक विषयों पर अपने विचार प्रगट करने का अधिकार दे रखा है। भारत में यह अधिकार प्रदत्त नहीं है। विज्ञान, कला आदि विषयों पर भारत में सक्षम अधिकारी से अनुमति प्राप्त करके लेख छपवाने की अनुमति अवश्य है। ब्रिटेन में प्रतिबंधित वर्ग को छोड़कर शेष सभी सेवकों के स्वतंत्र वर्ग को यह अधिकार प्राप्त है।

अमरीका में लोक सेवकों के स्वतंत्र वर्ग को यह अधिकार प्राप्त है, प्रतिबंधित वर्ग इस अधिकार का प्रयोग तभी कर सकते हैं जब तक उनके लेख और विचार राजनैतिक प्रकृति के नहीं हैं।

7.3.8 राजनैतिक दल को स्वयं द्वारा चंदा देने और अन्य किसी व्यक्ति को चंदा देने के लिए प्रेरित करने का अधिकार

भारत में कोई भी लोक सेवक किसी भी राजनैतिक दल को न तो स्वयं चंदा दे सकता है और न ही किसी व्यक्ति को यह कह सकता है कि वो किसी दल को चंदा दे। साथ ही साथ लोक सेवक किसी ऐसे अभियान में सम्मिलित नहीं हो सकता है जिसके हारा किसी दल के कोष में वृद्धि का उद्देश्य हो। फ्रांस में लोक सेवक स्वयं स्वेच्छा से किसी राजनैतिक दल को चंदा दे सकते है, लेकिन वे अन्य किसी व्यक्ति से चंदा देने के लिए आग्रह नहीं कर सकते और न ही किसी दल द्वारा चलाये जा रहे चंदा एकत्रित अभियान में सम्मिलित हो सकते हैं। ब्रिटेन में एक प्रतिबंधित वर्ग को छोड़कर शेष दोनों वर्गो लोक सेवक किसी दल को स्वेच्छा से चंदा दे सकते है। अमरीका मे सभी लोक सेवक स्वेच्छा से किसी राजनैतिक दल को दो चुनाव में खड़े किसी प्रत्याशी को चंदा दे सकते हैं। राजनैतिक दल द्वारा कोष वृद्धि अभियान में लोक सेवकों

का प्रतिबंधित वर्ग भाग नहीं ले सकता, जब कि स्वतंत्र वर्ग को यह अधिकार प्राप्त है। जन साधारण से राजनैतिक दल को चंदा देने के लिए कोई लोक सेवक अमरीका में अनुरोध नहीं कर सकता है।

7.3.9 जिस व्यक्ति का उस लोक सेवक के कार्यालय से काम पड़ता हो उसे स्वयं लोक सेवक द्वारा राजनैतिक कार्य के लिए अनुरोध करने का अधिकार

किसी ऐसे व्यक्ति से, जिसका उस लोक सेवक के स्वयं के कार्यालय में काम पड़ता हो, जानबूझकर राजनैतिक कार्य के लिए अनुरोध करना या हतोत्साहित करने के संबंध में भारत, अमरीका, फांस और ब्रिटेन में समस्त लोक सेवकों पर पूर्ण प्रतिबंध है।

7.3.10 राजकीय कर्तव्य का निर्वाह करते हुए, कार्यालय की पोशाक पहने हुए या सरकारी वाहन चलाते हुए राजनैतिक गतिविधियों में भाग लेने का अधिकार

राजकीय कर्तव्य का पालन करते समय किसी भी सरकारी कार्यालय या पद पर कार्यालय की पोशाक पहने हुए या सरकारी वाहन चलाते हुए किसी राजनैतिक गतिविधि में शरीक होने पर समस्त लोक सेवकों पर भारत, ब्रिटेन अमरीका और फ्रांस में पूर्ण प्रतिबंध है।

ऊपर वर्णित अधिकारों से यह सुस्पष्ट हो जाता है कि फ्रांस में लोक सेवकों को बहुत राजनैतिक अधिकार प्रदान कर रखे हैं। वहां के जागरूक नागरिक अपनी राजनैतिक अभिलाषा पूर्ण करने के उद्देश्य के लिए लोक सेवा को सुगम रास्ता मानते हैं। फ्रांस में अनेक लोक सेवक राजनीति में चले जाते हैं और वहां पर अपनी छाप छोड़कर आते हैं। लोक सेवकों को फ्रांस में असीम राजनैतिक अधिकार तो दे रखे हैं लेकिन एक शर्त इनके साथ जुड़ी हुई है कि लोक सेवकों के द्वारा इन अधिकार के उपयोग से उनके पद के दायित्व को वहन करने में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न नहीं होनी चाहिए। यदि इन अधिकारों के उपयोग के कारण लोक सेवक के दायित्वों के निर्वहन में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न होती है तो सक्षम उच्चाधिकारी के द्वारा उसके राजनैतिक अधिकारों के उपयोग पर प्रतिबंध–लगाए जा सकते हैं।

फ्रांस में लोक सेवकों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे अपने राजनैतिक अधिकारों का उपयोग बहुत ही सोच समझ कर और बहुत ही परिमित तरीके से करे। लोक सेवकों का व्यवहार और आचरण सदैव ही अनुकरणीय और श्रेष्ठ होना चाहिए। राजकीय कार्यालय के भीतर और बाहर उनका व्यवहार ऐसा न हो कि वे लोक सेवा के लिए अक्षम हो जाएं। ऐसे लोगों के साथ उन्हे समुचित दूरी बनाए रखना चाहिए जिनका काम उनके कार्यालय से पड़ता है। जिन व्यक्तियों का उनके कार्यालय से काम पड़ता है उनके साथ किसी प्रकार का व्यक्तिगत संबंध और मेलजोल नहीं बढ़ाना चाहिए। लोक सेवकों के कार्यो में ईमानदारी और समुचित पारदर्शिता हो एवं ऐसा प्रगट भी होते रहने की अपेक्षा की जाती है। वे अपने सारे कार्य और दायित्वों का निर्वहन निष्पक्ष और तटस्थता से करते चलें। उनसे यह अपेक्षा भी की जाती है कि देश के संविधान, प्रचलित कानून, नियम और उपनियम को सदैव ध्यान रखते हुए अपने कर्तव्य का पालन करे। हर छोटे व बड़े दायित्व को वे समुचित गंभीरता से ले और समस्त दायित्वों का निर्वाह कानून से करते चलें। जैसा कि अध्ययन में बताया जा चुका है कि फ्रांस में लोक सेवकों को राजनैतिक दल की सदस्यता ग्रहण करने और उसमें भी किसी पद धारण करने पर किसी

प्रकार का प्रतिबंध उन पर नहीं है। लेकिन इसके साथ–साथ यह भी अपेक्षा की जाती है कि किसी भी ऐसे संगठन में वे भाग नहीं ले जिससे उनके स्वतंत्र रूप से निर्णय लेने और अपने राजकीय दायित्व के निर्वहन में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न होती हो। अर्थात लोक सेवक के द्वारा किसी भी संगठन, जिसमें राजनैतिक दल भी हो सकता है में हिस्सा लेने से उनके द्वारा किये जाने वाले कार्य और या निर्णयों पर विपरीत प्रभाव पड़ता देख कर सक्षम उच्चाधिकारी द्वारा एसी गतिविधियों पर प्रतिबंध लगाया जा सकता है। लोक सेवकों से यह अपेक्षा की जाती है कि सरकारी सेवा में रहते हुए अन्य कोई वेतन भोगी पद स्वीकार्य नहीं करेंगे। देश के कानून का पालन करना और अपने उच्चाधिकारियों के आदेशों का पालन करना उनका परम कर्तव्य है।

संसार के समस्त देशों में संभवतया फ्रांस में लोक सेवकों को सर्वाधिक स्वविवेक की शक्तियों प्राप्त हैं। लोक सेवकों से यह अपेक्षा की जाती है कि अपने व्यावसायिक स्वविवेक का इस्तेमाल बहुत ही सोच विचार कर सही तरीके से करते चलेंगे। पाठकों को यहाँ यह बताना समीचीन होगा कि फ्रांस में लोक सेवक की सेवा पुस्तिका में उनके धर्म, मान्यतायें और राजनैतिक विचारों के विषय में प्रविष्टि नहीं की जाती है।

7.3.11 कर्मचारी संघ गठित करने और उनकी सदस्यता का अधिकार

सन 1946 से फ्रांस में समस्त लोक सेवक कर्मचारी संघ का गठन कर सकते हैं और उनका सदस्य बन सकते हैं। कर्मचारी संघ फ्रांस में पूर्णतः प्रशासन का हिस्सा बन चुके हैं। इन संघों को वहां अनेक सुविधाएं, यथा समुचित स्थान, बैठकें आयोजित करने की सुविधा, सूचना की सुविधा और यहां तक की संघ ठीक प्रकार से कार्य कर सकें, इसके लिए वहां प्रशिक्षण की व्यवस्था भी की गई है। मुख्य–मुख्य बड़े संघ कुछ संख्या में इन लोक सेवकों को नियुक्त कर सकते हैं, जिनकी सेवाएं इन संघों को उधार स्वरुप प्राप्त होती रहती हैं और इस दौरान उन्हें वेतन उनके मूल विभाग द्वारा प्रदान किया जाता है। जिन मामलों में संघ के प्रतिनिधियों का निर्वाचन किया जाता है, उनमें 75 से 80 प्रतिशत लोक सेवक, जो उन यूनियनों के सदस्य होते है, अपने मताधिकार का इस्तेमाल करते हैं। कर्मचारी संघों ने फ्रांस में स्थाई कप से अपना स्वरुप ग्रहण कर लिया है और सन 1963 से लोक सेवाओं में हड़ताल करने के विषय में निर्णय करने का इन संघों ने एकाधिकार प्राप्त कर लिया है । फ्रांस की ट्रेड यूनियन बड़ी मजबूत हैं।

ट्रेड यूनियन पर वहां समाजवादियों और साम्यवादियों का कब्जा है। लोक सेवकों के संघ कार्मिकों को प्राप्त सुविधाओं की रक्षा के लिए संघर्षरत रहे हैं। सन् 1995 के अन्त से तो ये संघ बड़ी मजबूती से अपने सदस्यों के हितों की रक्षा में प्रयत्नशील रहे हैं।

7.3.12 प्रदर्शन करने और हड़ताल का अधिकार

फ्रांस में लोक सेवकों के एक वर्ग विशेष को छोड़ कर सभी को प्रदर्शन करने और हड़ताल करने का अधिकार प्राप्त है। इस अधिकार का लिखित में प्रावधान किसी शासकीय आदेश या किसी कानून से नहीं वरण संविधान के आमुख में इसे सम्मिलित कर रखा है।

1946 से पूर्व फ्रांस में लोक सेवाओं का 'निरन्तरता के सिद्धान्त' के कारण हड़ताल के अधिकार पर प्रतिबंध था। वर्ष 1946 में फ्रांस के संविधान के आमुख में हड़ताल के अधिकार को बिना किसी प्रतिबंध के मान्यता प्रदान की। सन् 1950 में राज्य परिषद ने हड़ताल के अधिकार को बरकरार रखा। लोक सेवा की सामान्य संहिता में 1983 में इस अधिकार को सम्मिलित किया।

फ्रांस के इतिहास में लोक सेवाओं ने महत्ती भूमिका अदा की है। राजनैतिक अस्थिरता के दौर में लोक सेवाओं ने प्रशासनिक स्थिरता प्रदान करके अपने महत्व और गुणवत्ता को दर्शाया है। इन्हीं सब बातों का यह प्रभाव हुआ है कि अन्य देशों की तुलना में फ्रांस में सर्वाधिक राजनैतिक अधिकार प्रदान किये हैं और यहाँ तक कि उन्हें हड़ताल के अधिकार को संविधान में भी वर्णित कर दिया है। लोक सेवा अपनी कुशलता और निष्पक्षता के लिए ख्याति प्राप्त है।

फ्रांस में लोक सेवकों द्वारा अपनी मांगे मनवाने के उदेश्य से सरकार पर दबाव बनाने के लिए यदा कदा हड़ताल की जाती रही है। फ्रांस में हड़ताल के प्रमुख वर्ष 1789, 1830, 1848, 1968 और 1995 माने जाते हैं। पूंजीवादी समाज के विरूद्ध सन 1968 की हड़ताल बुलंद हुई। इस वर्ष विद्यार्थियों ने फ्रांस को एक प्रकार से आग में झोंक दिया था। विधार्थियों का यही आन्दोलन 1968 में डीगॉल शासन के अन्त का कारण बना।

हड़ताल के अधिकार पर प्रतिबंध का प्रावधान

प्रशासनिक आदेश द्वारा लोक सेवकों के हड़ताल के अधिकार को प्रतिबंधित किया जा सकता है। न्यायालय ने अपने निर्णयों में यह मान्य ठहराया है कि प्रशासनिक सत्ता हड़ताल के दौरान कुछ लोक सेवकों को ड्यूटी पर रहने का आदेश देकर लोगों के जान व माल की सुरक्षा और राज्य की निरंतरता को सुनिश्चित कर सकता है। राज्य द्वारा किसी हड़ताल को गैर कानूनी घोषित करने पर भी यदि लोक सेवक उसमें भाग लेते है तो कुछ देशों में इसे फौजदारी मामला माना जाता है लेकिन फ्रांस में इसे अनुशासनहीनता मानकर उसके विरूद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाई की जाती है।

फ्रांस की संसद को लोक सेवा के हड़ताल के अधिकार को प्रतिबंधित या सीमित करने का अधिकार है। पुलिस, सेना, न्यायालय और जेल सेवाओं पर अनेक अधिनियमों द्वारा हड़ताल पर प्रतिबंध–लगा रखा है। हड़ताल के दौरान न्यूनतम सेवा के सिद्धान्त द्वारा हवाई यातायात और सामाजिक सेवा प्रसारण पर प्रतिबंध लगाया जाता है।

फ्रांस में सन 1995 में लोक सेवकों की हड़ताल का विवरण

फ्रांस में 1995 में लोक सेवकों द्वारा की गई हड़ताल का संक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत करना समीचीन होगा। फ्रांस ने सन 1995 के अन्त में सरकारी सेवाकर्मियो की अभूतपूर्व हड़ताल का सामना किया । 24 नवम्बर 1995 से प्रारम्भ हुई यह हड़ताल रेलकर्मियों के काम रोको आन्दोलन से शुरू हुई तथा शीघ्र ही सड़क यातायात, टेलीफोन, डाक सेवा व अन्य उपभोक्ता सेवाओं के कर्मचारियों में फैल गई। फ्रांस का अति आधुनिक कहा जाने वाला जन–

जीवन लगभग पूरी तरह से ठहर सा गया था। यह हड़ताल 3. 5 सप्ताह चली थी। लाखों लोक सेवकों की हड़ताल के कारण सरकार पूरी तरह ठप्प पड़ गई थी।

पूर्वी यूरोप की तरह लौह आवरणी साम्यवाद के तहत नहीं वरन लोकतांत्रिक ढंग से चुनी हुई सरकार के माध्यम से संसदीय अनुमोदन के तहत फ्रांस एक समाजवादी देश रहा है। परिणामत: फ्रांस का सरकारी ढांचा बहुत बड़ा है। लगभग 12. 30 प्रतिशत कामकाजी आबादी का वहां सरकारी कर्मचारी है। ये सरकारी कर्मचारी शायद संसार के सर्वाधिक सुखी व सम्पन्न सेवा कर्मी हैं। यूरोपीय लोकतांत्रिक देशों में शायद फ्रांस ही ऐसा देश है जहां सर्वाधिक पब्लिक सेक्टर उधोग है। इस व्यवस्था का ही परिणाम है। वहाँ की ' घाटे की अर्थव्यवस्था' यूरोपीय मुद्रा की समानता की मांग है कि फ्रांस अपने बजट घाटे को नियंत्रित करे तथा मुद्रास्फीति को रोके। अन्यथा यूरोपीय संघ में वह समान दर्जा प्राप्त नहीं कर सकता। शिराक ने लोगों को यह आश्वासन दिया था कि वे यूरोपीय संघ में जर्मनी के दबदबे को कम कर देंगे तथा अर्थव्यवस्था में सुधार कर नए रोजगारों को उत्पन्न करेंगे। फ्रांस में बढ़ती हुई बेरोजगार युवकों की फौज को वे राष्ट्र के नवनिर्माण में लगा देंगे। शिराक का यह आश्वासन तब तक पूरा नहीं किया जा सकता था जब तक कि फ्रांस की जनता अपने ऊपर कठोर आर्थिक अनुशासन लागू न करें। सुख–सुविधाओं का उच्च स्तर रख कर फ्रांस की अर्थव्यवस्था को दुरुस्त नहीं किया जा सकता। लेकिन सरकारी कर्मचारियों ने यह नहीं सोचा था कि शिराक द्वारा दिये गए 'राष्ट्रीय स्वाभिमान' के नारे का यह अर्थ है कि उन्हें अपनी सुख–सुविधाएं छोड़नी पडेगी। फ्रांस अपनी आय का 50 प्रतिशत तो उन सेवाओं का घाटा पूर्ति में ही खर्च करता है। इस प्रकार घाटे की अर्थव्यवस्था को चला कर फांस अपने बजट घाटे को भी कम नहीं कर सकता। अत: 1995 में प्रधानमंत्री एलेन जुप्पी ने एक योजना बनाई। 64 बिलियन डॉलर के घाटे को कम करने के लिए उन्होंने लोक सेवकों की पेंशन सुविधाएं ,स्वस्थ्य सेवा व उनके अपने भत्तों में कटौती की तथा कुछ कर बढ़ाए। उस योजना के तहत उस समय के बजट घाटे को जो 6 प्रतिशत था उसे पिछली सदी के अन्त तक 3 प्रतिशत तक लाना था। यह निश्चित था कि 1995 के अंत के समय फ्रांस में जो कुल उत्पादन था उसमें इतनी सुख–सुविधाओं से युक्त जीवन नहीं जीया जा सकता था। यूरोप के अन्य देशों या जर्मनी से स्पर्धा का तो सवाल ही पैदा नहीं उठता।

जर्मनी व अन्य यूरोपीय देशों से आर्थिक समानता का सख्त तकाजा था कि फ्रांस के लोग अपने उपभोग को अपने सकल उत्पाद के साथ संतुलित करें। फ्रांस के लोक सेवकों को यह स्वीकार नहीं था। दरअसल समस्या यह है कि सरकारी कर्मचारी अपने सुविधाओं को कम नहीं कर सकते हैं। साथ ही साथ अपनी संतानों की बेरोजगारी को दूर करने के लिए उन्हें उद्योग के अवसर नहीं वरन उन्हें तो सरकारी नौकरी ही चाहिये। यहीं राष्ट्रीय स्वाभिमान तथा तथाकथित समाजवादी संरचना में टक्कर हो गई।

फ्रांस की सामाजिक स्थिति भी कुछ विचित्र ही है, वहां के निवासियों को जुप्पी की सुधार योजना से भी सहानुभूति थी तथा साथ ही साथ हड़ताली लोक सेवकों की मांगों से भी पूरी हमदर्दी थी। उन्हें यूरोपीय संघ में जर्मनी के मुकाबले दोयम दर्जे का भी नहीं रहना था तो अपने सरकारी कर्मचारियों की सुख–सुविधाओं को भी तनिक भी कम नहीं करना था। उसका

सीधा अर्थ था वेतन–भत्तों में कटौती तथा करों में वृद्धि। फ्रांस को यूरोपीय संघ में वास्तव में सम्मानपूर्ण जीवन जीने की आवश्यकता थी अतः प्रधानमंत्री जुप्पी ने घोषणा कर दी कि संयम पूर्वक उपभोग की मर्यादा स्वीकार करके की घाटे की अर्थव्यवस्था के दुष्चक्र से बाहर निकलना है।

सन 1995 में फ्रांस की जनता ने यह स्वीकार किया था कि यूरोपीय संघ की समान मुद्रा हो। समान मुद्रा पर आधारित अर्थव्यवस्थाएं ज्यादा फर्क वाली नहीं हो सकती हैं। फ्रांस यदि यूरोपीय मुद्रा की एकात्मकता चाहता है तो स्वाभाविक रूप से उसे मुद्रा की क्रय शक्ति के अनुकूल ही अपने खर्चो को सीमित रखना होगा। नोट छाप कर कृत्रिम रूप से सम्पत्ति को बढ़ाने की छूट इससे समाप्त होती है।

फ्रांस यह मानने को तैयार नहीं था कि उपलब्ध साधनों से कहीं अधिक सुविधाओं वाला जीवन जी रहा है। इसका सार्वजनिक क्षेत्र अत्यंत विशालकाय है जो बहुत अकुशल और अनावश्यक रूप से मंहगा है, राज्य की ओर से इसके कृषि क्षेत्र को अत्यधिक रियायतें उपलब्ध हैं, औद्योगिक क्षेत्र प्रतियोगिता में कहीं ठहरता नहीं है। इसे अस्पर्धात्मक माना जाता रहा है। सबसे विकट चुनौती सरकार द्वारा दी जाने वाली सामाजिक सेवाओं के कारण उत्पन्न हो रही है जिसे वहां का समाज और लोक सेवा तनिक भी कम करने को तैयार नहीं थी।

प्रधानमंत्री एलन जुप्पी ने साफ कह दिया था कि या तो परिवर्तन स्वीकार करो अन्यथा नष्ट होने के लिए तैयार रहो। राष्ट्रपति जेक्यूइस शिराक ने भी साफ इशारा कर दिया था कि सरकार द्वारा फ्रांस में सुधारवादी कदम उठाना नितान्त आवश्यक हो गया है।

यूरोप अपनी अर्थव्यवस्था के पुनर्निर्धारण की प्रक्रिया को गंभीरता से अंजाम देना चाहता है। परिस्थितियों एवं स्वभाव का यूरोपीयकरण करना इतना सरल कार्य नहीं है। आर्थिक नियोजन बनाम सरकार की भूमिका के संदर्भ में दृश्य पूरे यूरोप में वैविध्यपूर्ण है। घोर केन्द्रीयकृत अर्थव्यवस्था को, जैसी की फ्रांस की है, महंगी एव अस्पर्धात्मक माना जाता हैं। सबसे पीछे रहने वाले मुख्यतः नायक देश ही है, फ्रांस एवं जर्मनी।

बजट घाटे को कम करने के लिए उठाए गए सरकार के कदमों से लाखों लोक सेवकों की सुख सुविधाओं को कम करना था। लोक सेवकों के वेतन वृद्धि पर रोक और उनके अवकाश प्राप्ति लाभ में भारी कटौती के प्रस्तावों को रोकने के उद्देश्य से यह 24 नवम्बर 1995 से हड़ताल की गई थी। शिराक जुप्पी प्रशासन को कसने के लिए यह हड़ताल की थी। लोक नौकरशाही 50 के वय में सेवानिवृत्ति के अधिकार को बनाए रखना चाहती थी और वर्ल्ड बैंक की उदार नीतियों जैसी पेंशन भी चाहती थी।

7.4 सारांश

फ्रांस की लोक सेवाओं को प्रदत्त अधिकारों को लेकर इसकी आलोचना भी की जाती है। जैसे लोक सेवाओं की स्थिरता आज के आर्थिक सुधारों के क्षेत्र में बहुत बड़ी बाधा बन कर सामने खड़ी है। फ्रांस में बेरोजगारी को देखते हुए लोक सेवाओं को दिये विशेषाधिकार आज के समय में उपयुक्त जान नहीं पड़ते। फ्रांस में दशकों से प्रशासनिक सुधारों का सफल प्राप्त नहीं हो सका है। नवीन अवधारणाओं और चुनौतियों के अनुरूप लोक सेवाऐं अपने आपको ढालने में

सफल नहीं हुई है। लोक सेवाओं को बदली हुई परिस्थितियों के अनुरूप अपने आपको ढालना होगा अन्यथा यूरोपीय संध के भीतर और बाहर की दुनिया से फ्रांस प्रतियोगिता में ठहर नहीं पाएगा।

फ्रांस में सामाजिक और व्यावसायिक क्षेत्र में लोक सेवा सर्वाधिक विवादित क्षेत्र है। लोक सेवा से संबंधित होना आर्थिक विशेषाधिकार और सामाजिक श्रेष्ठता प्रतिपादित करता है। ऐसे समय में जब यूरोप का निर्माण का कार्य चल रहा है और जब पूरे संसार में राज्य के सुधार का कार्य प्रगति पर है, फ्रांस के लोक सेवकों की संख्या और साथ ही साथ सार्वजनिक क्षेत्र का महत्व तीव्र वाद–विवाद के मसले माने जाते हैं।

7.5 अभ्यास प्रश्न

1. फ्रांस के लोक सेवकों पर एक लेख लिखिए।
2. फांस के लोक सेवकों के राजनैतिक अधिकारों का वर्णन कीजिए।

7.6 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. इस अध्याय में फ्रांस के लोक सेवकों के साथ भारत, इंग्लैण्ड और अमरीका के लोक सेवकों के राजनैतिक से तुलना की है। विस्तृत अध्ययन के लिए देखिये –

(1) वी. एम. सिन्हा, कार्मिक प्रशासन, आर. बी. एस ए. पब्लिशर्स, जयपुर, 1986,

(2) श्रीराम माहेश्वरी, द सिविल सर्विस इन ग्रेट ब्रिटेन, कॉनसेप्ट पब्लिशिंग कं, नई दिल्ली, 1976,

(3) श्रीराम माहेश्वरी, हायर सिविल सर्विस इन फ्रांस, ऐमाइड पब्लिशर्स, नई दिल्ली

(4) सी. एम. जैन, सेवावर्गीय प्रशासन, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2005

(5) अमरेश्वर अवस्थी और आनन्द प्रकाश अवस्थी, भारतीय प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2004,

(6) सुरेन्द्र कटारिया, कार्मिक प्रशासन, आर. बी. एस. ए. पब्लिशर्स, जयपुर, 2005

(7) स्टीवन डब्ल्यू हेस और रिचर्ड सी केरने (सम्पा.) पब्लिक पर्सोनल एडमिनिस्ट्रेशन, प्रिंटिस हॉल, न्यू जर्सी, 1990

ISBN - 13/978-81-8496-121-8